❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ५ | गौराब्द ४७३, मास—त्रिविक्रम २४, वार—संकर्षण | संख्या १

सोमवार, ३१ ज्येष्ठ, सम्वत् २०१६, १५ जून १९५९

श्रीश्रीषड्गोस्वाम्ष्टयकम्

[श्रीश्रीनिवासाचार्य प्रभु-विरचितम्]

कृष्णोत्कीर्त्तन-गान-नर्त्तन-परौ प्रेमामृताम्भोनिधी धीराधीरजन-प्रियौ प्रियकरौनिर्मत्सरौ पूजितौ ।
श्रीचैतन्य-कृपाभरौ भुवि भुवो भारावहन्तारकौ वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥१॥

नानाशास्त्र विचारणैक-निपुणौ सद्धर्म-संस्थापकौ लोकानां हितकारिणौ त्रिभुवने मान्यौ शरण्यकरौ ।
राधाकृष्ण पदारविन्द-भजनानन्देन मत्तालिकौ वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥२॥

श्रीगौराङ्ग-गुणानुवर्णन-विधौ श्रद्धा-समृद्ध्यन्वितौ पापोत्ताप-निकृन्तनौ तनुभृतां गोविन्दगानामृतैः ।
आनन्दाम्बुधि-वर्द्धनैक-निपुणौ कैवल्य निस्तारकौ वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥३॥

त्यक्त्वा तूर्णमशेष मण्डलपति-श्रेणीं सदा तुच्छवत् भूत्वा दीनगणेशकौ करुणया कौपीन-कन्थाश्रितौ ।
गोपीभाव रसामृताब्धि-लहरी-कल्लोल-मग्नौ मुहुर्वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥४॥

कूजत् कोकिल-हंस-सारस-गणाकीर्णे मयूराकुले नानारत्न-निबद्ध-मूल-विटप श्रीयुक्त वृन्दावने ।
राधाकृष्णमहर्निशं प्रभजतौ जीवार्थदौ यौ मुदा वन्दे रूप सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥५॥

संख्यापूर्वक-नामगान-नतिभिः कालावसानीकृतौ निद्राहारविहारकादि विजितौ चात्यन्त-दीनौ च यौ ।
राधाकृष्ण-गुण-स्मृतेर्मधुरिमानन्देन सम्मोहितौ वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥६॥
राधाकुण्ड-तटे कलिन्दतनया तीरे च वंशीवटे प्रेमोन्माद वशादशेष-दशया ग्रस्तौ प्रमत्तौ सदा ।
गायन्तौ च कदा हरेर्गुणवरं भावाभिभूतौ मुदा वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ।७।
हे राधे व्रजदेविके ! च ललिते ! हे नन्दसूनो ! कुतः श्रीगोवर्द्धन-कल्पादप-तले कालिन्दी- वन्ये कुतः ।
घोषन्ताविति सर्वतो व्रजपुरे खेदैर्महाविह्वलौ वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥८॥

अनुवाद—

जो श्रीकृष्णके गुण-कीर्तन और नृत्य-गीतमें सदा-सर्वदा तत्पर हैं, जो श्रीकृष्णप्रेमरूपी अमृतके समुद्र हैं, जो विद्वान और मूर्ख सबके प्रिय हैं, जो सबको प्रिय लगनेवाले आचरण करते हैं, जो ईर्ष्या-द्वेषसे रहित, सर्वलोक-पूज्य और श्रीचैतन्यदेवके विशेष कृपा-पात्र हैं एवं जो इस लोकमें जीवोंका उद्धार कर पृथ्वीका भार हल्का करते हैं, मैं बारम्बार उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ-दास और श्रीजीव गोस्वामीकी वन्दना करता हूँ ॥१॥

जो नाना-शास्त्रोंके विवेचनमें अतिशय निपुण हैं, सद्धर्मके स्थापक हैं, मनुष्योंका परम कल्याण करनेवाले हैं, तीनों लोकोंके पूज्य और आश्रयदाता एवं श्रीराधागोविन्दके चरणकमलोंके भजनानन्दके मत्त मधुप हैं, मैं बारम्बार उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास और श्रीजीव गोस्वामीको प्रणाम करता हूँ ॥२॥

श्रीगौरांग महाप्रभुकी गुणावलीका वर्णन करनेमें जिनका अतिशय आग्रह है, जो श्रीकृष्णगुणगान रूपी अमृतका सिंचन कर जीवोंके पाप-तापकी शान्ति करते हैं, जो आनन्द-सागरको बढ़ानेमें अत्यन्त निपुण हैं एवं जो कैवल्य मुक्तिको धिक्कार देकर उससे जीवोंकी रक्षा करते हैं, मैं बारम्बार उन श्रीरूप सनातन रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास और श्रीजीव गोस्वामीको प्रणाम करता हूँ ॥३॥

जिन्होंने असंख्य मण्डलपतियों (राजा-महाराजाओं) के संगको भी अत्यन्त तुच्छ समझ कर झट छोड़ दिया था तथा दीन-हीन कंगालोंके रक्षक बन कर कौपीन और गुदड़ी धारण किया था एवं जो गोपी-प्रेम-रसामृत-सिन्धुकी तरङ्गोंमें सर्वदा निमग्न हैं, मैं उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास और श्रीजीव गोस्वामीको पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ॥४॥

कोयल, हंस, सारस, मयूर आदि पक्षियोंके मधुर कलरवसे निनादित और नाना-प्राकारके रत्नोंसे बँधे हुए जड़ वाले वृक्षोंकी पंक्तियोंसे सुशोभित श्रीवृन्दावनमें जो दिनरात श्रीराधाकृष्णका भजन करते थे एवं जो प्रसन्न होकर जीवोंकी मनोकामनाएँ पूर्ण करते थे, मैं उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास और श्रीजीव गोस्वामीको बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥५॥

जो संख्यापूर्वक नाम करने, कीर्तन करने, प्रणाम करने तथा स्तव करनेमें ही अपना सारा समय व्यतीत करते, जो आहार-विहार और निद्राको जीत लिये थे, जो अत्यन्त दीन-हीनकी भाँति विचरण करते एवं जो श्रीराधा-गोविन्दकी मधुराति मधुर गुणावलीका स्मरण कर परमानन्दमें विभोर रहा करते थे, मैं उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास और श्रीजीव गोस्वामीको बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥६॥

जो श्रीराधाकुण्डके तट पर, यमुनाके तीर पर और वंशीवटके नीचे प्रेमोन्मत्त होकर अशेष प्रकार की दशाओंको प्राप्त होते थे—कभी उन्मत्त सा विचरण करते, कभी हरिगुण गान करते और कभी आनन्दमें भर कर भावोंसे विभूषित हो पड़ते, मैं उन

श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास और श्रीजीव गोस्वामीको बार बार प्रणाम करता हूँ ॥७॥

"हे व्रजेश्वरी राधे! तुम कहाँ हो? हे ललिते तुम कहाँ हो? हे कृष्ण तुम कहाँ हो? तुम लोग श्रीगोवर्द्धनके कल्प-वृक्षोंके नीचे हो अथवा कालिन्दी-तटके सघन वनोंमें, कहाँ हो?" इस प्रकार पुकारते-पुकारते जो अत्यन्त व्याकुल होकर व्रजभूमिमें सर्वत्र भ्रमण करते थे, मैं उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथदास और श्रीजीव गोस्वामी को पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥८॥

संत (सज्जन) के लक्षण

शान्त (११)

शुद्ध वैष्णव परम शान्त होते हैं। शुद्ध वैष्णव को छोड़ कर जो लोग अपनेको शान्त कहनेका दम भरते हैं, वह उनका केवल दिखावा मात्र है। बिना भगवद्भक्तिके हृदय अशान्त रहता है, फिर अभक्त शान्त कैसे कहे जा सकते हैं? प्रकृतिसे बुद्धि या महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। महत्तत्त्वसे अहङ्कार पैदा होता है। बद्ध जीवोंमें—अभक्त जनोंमें अहङ्कार प्रबल रहनेके कारण वे अप्राकृत-दर्शनसे विमुख होते हैं और फलतः प्राकृत रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्शके वशीभूत होते हैं। प्राकृत रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शके अधीन अहङ्कारयुक्त व्यक्ति त्रितापसे दग्ध होकर सर्वदा अशान्ति अनुभव करता है, वह भला शान्त कैसे हो सकता है? श्रीचैतन्यचरितामृतमें इस विषयका बड़ा ही रोचक और स्पष्ट विवेचन पाया जाता है—

केशकी नोकके सौ टूकड़े कर उसके एक टूकड़े को पुनः सौ टूकड़े करो, तो उसके एक टूकड़े के बराबर जीवका स्वरूप सूक्ष्म अर्थात् छोटा होता है। जीव संख्यामें अनन्त हैं। ये असंख्य जीव दो भागों में विभक्त हैं—चलने वाले—जङ्गम और न चलने वाले—स्थावर। इनमें जङ्गम तीन प्रकारके होते हैं—जलचर, थलचर और नभचर। इनमेंसे बहुत ही थोड़े से जीव मनुष्य-योनिके हैं। मानव जातिमें भी म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध और शबर आदि लोग ही अधिक हैं। वेद माननेवालोंकी संख्या बहुत ही कम है। वैदिक मनुष्योंमें भी आधे लोग ही वेदकी विधियोंको मान कर चलते हैं और इनमें भी कर्मनिष्ठ पुरुष थोड़े हैं। ऐसे-ऐसे करोड़ों कर्मनिष्ठोंसे एक ज्ञानी श्रेष्ठ है और ऐसे-ऐसे करोड़ों ज्ञानियोंमेंसे विरला ही कोई एक मुक्त होता है। करोड़ों मुक्तोंमें एक कृष्णभक्तका होना बड़ा ही दुर्लभ है। कृष्ण-भक्तके अतिरिक्त भोग-कामी, मुक्तिकामी अथवा सिद्धिकामी—सभी अशान्त होते हैं, क्योंकि ये सभी कामनाओंके दास होते हैं। परन्तु कृष्णभक्त शान्त होता है; क्योंकि वह निष्काम होता है।

> कोटि मुक्त मध्ये दुर्लभ एक कृष्ण भक्त।
> कृष्ण-भक्त—निष्काम, अतएव 'शान्त'॥
> भुक्ति, मुक्ति-सिद्धिकामी सकलेई अशान्त।
> (चै० च०)

भगवत् स्वरूप, जीव-स्वरूप और माया-स्वरूप तथा इनमें परस्पर क्या सम्बन्ध है—यह जान कर भगवद्भक्ति द्वारा भगवत्सेवा अर्थात् कृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति ही समस्त शास्त्रोंकी सार शिक्षा है। परन्तु भौतिक-ज्ञान द्वारा वेदकी ये शिक्षाएँ समझमें नहीं आती हैं। भौतिक-ज्ञान प्रबल रहनेसे हरि-सेवा-प्रवृति क्रमशः दूर होती जाती है और भौतिक ज्ञानी अनन्त

कोटि जन्मोंमें भी संसारसे उद्धार नहीं पाता। ये लोग सर्वदा विष्णु और वैष्णवोंके प्रति अपराध ही संचय करते हैं। मुँह से वेद मान कर भी ये वेद-विरुद्ध आचरणमें मत्त रहते हैं। इनमेंसे कोई कोई अप्राकृत-रसकी अनुभूति जड़ीय स्त्री-संग द्वारा करना चाहते हैं—जो सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है। भगवान्‌की इच्छा, सभी इनसे घृणा करते हैं। इसलिये सबसे उपेक्षित होकर उत्तरोत्तर संसारमें फँसते जाते हैं। वेदोंका मूल तात्पर्य समझ न पानेके कारण ये लोग अपने असत् विचारोंको ही धर्मके नाम पर चलाते हैं। अब अपने विचारोंकी पुष्टिके लिये इनको शुद्ध-वैष्णवोंके शुद्ध विचारों और शास्त्र-सम्मत आचरण का तीव्र प्रतिवाद करना आवश्यक प्रतीत होता है। इनको जब तक कृष्ण-विमुखताके विषमय फलकी उपलब्धि नहीं होती, तब तक ये लोग शुद्ध-वैष्णवोंको भी अपने समान अहंकारी, कपटी समझते हैं।

शुद्ध वैष्णव धर्म इन अनभिज्ञ अर्वाचीन अशान्त जीवोंकी केवल उपेक्षा भर करता है। श्रीमद्‌भागवत में त्रिदण्डि भिक्षुकी कथा आती है। त्रिदण्डि भिक्षु परम भागवत थे; अशान्त अहंकारी मनुष्य उनको खूब सताया करते थे, परन्तु वे केवल उनकी उपेक्षा करते थे। प्रत्येक वैष्णवके लिये त्रिदण्डि-भिक्षुका चरित्र आदर्श है। परमहंस भागवतजन इन अहंकारी अशान्त जीवोंकी अशान्ति दूर न कर केवल मात्र उनकी उपेक्षा करेंगे।

श्रीचैतन्य महाप्रभुने स्वयं संन्यास ग्रहण कर जीव मात्रको शिक्षा दी है। श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा पर चलनेसे जीवकी अशान्ति सहज ही दूर हो सकती है।

दुर्जन लोग वैष्णव त्रिदण्डी संन्यासियोंको नाना प्रकारसे सताया करते हैं, उनका तिरस्कार करते हैं, उनकी हँसी उड़ाते हैं, कभी-कभी उन पर थूक देते हैं, पेशाब कर देते हैं और उनको पीटते भी हैं। परन्तु संत लोग उनके व्यवहारसे क्षुब्ध नहीं होते, उसे अपने पूर्व जन्मोंके कर्मोंका फल मान कर शान्त चित्तसे हरि भजनमें तत्पर रहते हैं। ऐसे भक्त संसारमें बिरले ही होते हैं।

प्राचीन कालमें उज्जैनमें एक ब्राह्मण रहता था। उसने खेती-बारी और व्यापार आदि करके बहुत सा धन इकट्ठा कर लिया था। परन्तु वह बड़ा ही लोभी और कृपण था। धर्म-कर्मसे उसे बड़ी चिढ़ थी। इसलिये उसके घरवाले, बेटा-बेटी, भाई-बन्धु, नौकर-चाकर और पत्नि सभी उससे अप्रसन्न थे। समय पलटा; ग्राम-वासी और देवता भी उसके प्रतिकूल हो गये। उसका सारा धन, जिसे वह बड़े परिश्रम और कंजूसीसे इकट्ठा किया था आँखोंके सामने ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया! कुछ धन आगमें जल गया, कुछ चोरी चला गया, कुछ धनतो उसके कुटुम्बियोंने ही हड़प लिये और कुछ शासकोंके पल्ले पड़ा। इस प्रकार उसकी सारी सम्पत्ति जाती रही। घरवालोंने उसका तिरस्कार करना आरम्भ किया। उसे बड़ी ग्लानि हुई। उसे संसारकी नग्न मूर्त्ति दीख पड़ी। संसारका सच्चा स्वरूप देख कर उसे संसारके प्रति दुःख-बुद्धि और उत्कट वैराग्य हो गया। घरसे निकल पड़ा। त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण कर संन्यासका मार्ग पकड़ा।

उसने संन्यास-संस्कार आदि सब कुछ स्वयं किया। कोई कृत्रिमता न थी। उसका हृदय सरल था। वह सच्ची शान्ति प्राप्त करना चाहता था। अतः उसका संन्यास सच्चे वैराग्यका प्रतीक था। संसारका सच्चा रूप उपलब्धि किये बिना—उसमें दुःख बुद्धि और उत्कट वैराग्य हुए बिना किसीको जोरपूर्वक संन्यास दे देनेसे संन्यास सिद्ध नहीं होता। वैराग्य बुलाने से नहीं आता।

उज्जैन निवासी ब्राह्मण घर संसारसे अपना सारा सम्बन्ध तोड़ कर भगवद्‌भजनके उद्देश्यसे पृथ्वी पर स्वच्छन्द रूपसे विचरण करने लगा। उसने अपनी सारी आसक्तिको भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें लगा दिया। अब तक वह बहुत ही बुड्ढा हो चुका था। दुष्ट लोग उसे बड़े तंग करते और तरह-तरहसे उसका तिरस्कार करते। कोई उसका दण्ड छीन लेता, कोई जलपात्र झपट लेता, कोई भिक्षापात्र उड़ा लेता। कोई कंथा और कोई आसन-माला लेकर भाग जाता। जब

वह मधुकरी माँग कर किसी सरोवरके तट पर खाने बैठता, तो दुष्ट लोग उसके सिर पर मूत देते, रोटी फेंक देते, उसके ऊपर थूक देते और उसे बेतरह पीटते। कोई कहता धर्मका ढोंग तो देखो, यह कृपण अब भीख माँगने का धंधा अपनाया है। कोई उसे चोर कहता, कोई पागल कहता। कोई कहता—सौ चूहोंको खाकर बूढ़ी बिल्ली चली हज को। बाँध लो, मार डालो, इस बगुला भगतको। इस प्रकार दुष्ट लोग उसे बड़े तंग करते।

परन्तु वह अवधूत सब कुछ चुपचाप सह लेता। उसके मनमें कोई विकार नहीं पैदा होता। वह समझता यह सब मेरे पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है और उसे मुझे अवश्य ही भोग करना पड़ेगा। मेरे सुख-दुःखका कारण न ये मनुष्य हैं, न देवता हैं, न ग्रह हैं और न काल ही हैं, बल्कि कर्मोंमें आसक्तिकी रस्सी द्वारा बँधा हुआ मन ही सारे प्रपंचोंकी जड़ है। दूसरी बात यह है कि जीव मात्र जब स्वरूपतः कृष्ण-दास है, तब उनकी यह प्रवृत्ति एक न एक दिन अवश्य ही रुकेगी। मैं इस समय अपना भजन छोड़ कर इन दुष्टोंको समझाने क्यों जाऊँ? इनमें अभी श्रद्धाका अभाव है। ये अभी किसीकी कुछ भी न सुनेंगे।

मैं त्रिदण्डी—भगवानका दास हूँ। अतएव इनको तन, मन और वचन किसी प्रकार भी कष्ट नहीं देना चाहता। मैं विशुद्ध महाजनोंके पथको छोड़ कर अन्याभिलाष, कर्म और ज्ञानके मार्गोंका अनुसरण नहीं कर सकता। संसारसे सम्पूर्ण आसक्ति हटा कर मैं एकान्त मनसे भगवद्भजन करूँगा। इसके लिये मैं भी उन्हीं महाजनोंका पथका अनुसरण करूँगा, जो संसारिक समस्त प्रकारकी कुप्रवृत्तियोंका त्याग कर अनन्य भावसे हरिभजनमें प्रवृत्त हुए हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुने इस कथाका उल्लेख कर अपने आश्रित वैष्णव त्रिदण्डिजनोंको श्रीहरि भजन का जो पथ दिखलाया है, उसीके अनुसार प्राचीन वेश-पद्धतिओंमें त्रिदण्ड ग्रहण करनेकी व्यवस्था लिपिबद्ध है। 'गृही-गौरांग' के दास गृहमेधी पुरुषों के दिमागमें ये बातें कभी भी प्रवेश नहीं कर सकती हैं। वे संकीर्ण मायावादका आश्रय कर वैध और अवैध प्राकृत सहजिया होकर जड़-भोगको ही प्रेम कहते हैं। परन्तु शान्त महाजन ऐसे घृणीत वैध या अवैध सहजियावादको सम्पूर्ण रूपसे त्याग कर व्रजके प्रेमी संतों द्वारा निर्दिष्ट श्रीरूपानुग भजन-मार्गका अनुसरण करते हैं।

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त, सरस्वती।

भक्तितत्त्व विवेक-चतुर्थ प्रबन्ध

[गत संख्या से आगे]

इस प्रकार श्रद्धासे युक्त व्यक्ति ही शुद्धा भक्तिके एकमात्र अधिकारी हैं। यहाँ पर और भी एक विचार है। साधनभक्ति दो प्रकार की होती है अर्थात् वैध साधनभक्ति और रागानुगा साधन भक्ति—

वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा।

वैधी साधनभक्ति और रागानुगासाधन भक्ति में क्या अन्तर है—इसे समझना आवश्यक है। क्योंकि इनके भेदको नहीं समझनेसे नाना प्रकारके संशय बच रहेंगे जो भक्तिके लिये विशेष हानिकारक हैं। वैधी भक्तिके सम्बन्धमें श्रीरूपगोस्वामीने लिखा है—

यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते ॥
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते ॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

भक्ति जीवकी स्वाभाविक वृत्ति है। यह उनके चित्स्वरूपका अभिन्न धर्म है। जीव बद्ध होने पर भगवद्विमुख होकर माया-प्रसूत सांसारिक विषयोंके प्रति अनुरक्त हो पड़ता है। विषय-सुखमें आसक्त होते ही उसकी कृष्ण-सेवा प्रवृत्ति अर्थात् स्वाभाविक वृत्ति—भक्ति लुप्तप्राय हो पड़ती है। चाहे जैसे भी हो सौभाग्यवश जीवका चित्स्वरूपगत राग (कृष्णके प्रति अनुरक्ति) उदित होने पर ही जीव कृतार्थ होता है। प्रेमोदयके साथ-साथ स्वभावतः ही रागोदय भी होता है। परन्तु विषयोंमें आसक्त जीवका जो जड़ विषयोंमें राग दीख पड़ता है, वह विकृत राग है—शुद्ध राग नहीं। उस समय जीवका स्वाभाविक राग सुप्तप्राय या आच्छादित रहता है। इस सुप्त या आच्छादित स्वाभाविक रागको जाग्रत करने के लिये सदुपदेशोंकी बड़ी आवश्यकता होती है। वेद-वेदांग ऐसे-ऐसे उपदेशोंके भण्डार हैं। इन शास्त्रोंके शासनमें रह कर उनके उपदेशोंका आचरण करनेसे जिस भक्ति-प्रवृत्तिका उदय होता है, उसे वैधी-भक्ति कहते हैं।

अब रागानुगा भक्तिका नीचे संक्षेपमें विवेचन दिया जा रहा है। श्रीजीव गोस्वामी भक्तिसंदर्भमें लिखते हैं—

'तत्र विषयिणः स्वाभाविको विषय-संसर्गेच्छातिशयमयः प्रेमा रागः। यथा चक्षुरादीनां सौन्दर्यादौ; तादृश एवात्र भक्तस्य श्रीभगवत्यपि राग इत्युच्यते' विषयी पुरुषोंको स्वाभाविक विषय-संसर्गसे विषयोंके प्रति प्रेमके आकारमें जो अत्यधिक प्रीति होती है, उसे राग कहते हैं, सौन्दर्य देख कर जिस प्रकार आँखे अधीर हो उठती हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णके प्रति भक्तकी जो प्रवृत्ति होती है उसे 'राग' कहते हैं। ऐसे रागके प्रति स्वाभाविक रुचि सम्पन्न व्यक्ति के अनुगत होने पर जो रुचि पैदा होती है, उसे रागानुगा-भक्ति कहते हैं। यहाँ पर इस विषय पर इतना ही बतलाया गया। पीछे अन्यत्र विस्तारसे बतलाया जायगा। ऐसे रागानुगा भक्तिमें किसका अधिकार है, इसका श्रीरूप गोस्वामी निरूपण करते हैं—

रागात्मिकैक निष्ठा ये व्रजवासि-जनादयः।
तेषां भावाप्तये लुब्धो भवेदत्राधिकारवान् ॥
तत्तद्भावादिमाधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्ति लक्षणम् ॥
(भ० र० सि० १।२।१४७-१४८)

व्रजवासियोंका कृष्णके प्रति भाव ही रागात्मिका-भक्तिका सर्वश्रेष्ठ और एक मात्र उदाहरण है। यह भाव व्रजके अतिरिक्त और कहीं भी नहीं दिखलायी पड़ता। अब व्रजवासियोंके श्रीकृष्णके प्रति भावको लक्ष्यकर वैसा ही भाव प्राप्त करनेके लिये जिस सौभाग्यशाली जीवको लोभ होता है,वही व्यक्ति रागानुगा-भक्तिका अधिकारी है। उन मधुर भावोंके सम्बन्धमें श्रवण करने पर भी जबतक लोभ न हो, तबतक उसमें प्रवेश नहीं हो सकता है। रागानुगा भक्तिके साधनमें लोभ ही एकमात्र अधिकार का हेतु है, शास्त्र और युक्ति नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस प्रकार वैधी-भक्तिके अधिकारका हेतु एकमात्र श्रद्धा है, उसी प्रकार रागानुगा-भक्तिके अधिकारका एकमात्र हेतु है—लोभ। यहाँ शंका हो सकती है कि पहले जिस श्रद्धाको शुद्धभक्तिके अधिकारका हेतु बतलाया गया है, वह श्रद्धा क्या असम्पूर्ण है ? यदि वह श्रद्धा किसी एक प्रकारकी भक्ति-अधिकारका ही हेतु है, तब उसे समस्त प्रकारके भक्ति-अधिकारोंका हेतु क्यों बतलाया गया था ? इस शंकाका समाधान यह है कि केवल श्रद्धा ही शुद्ध भक्ति-अधिकारका हेतु है। श्रद्धा के अभावमें किसी प्रकार भी शुद्ध भक्तिका उदय नहीं होता। सिद्धान्त यह है कि वैधीभक्तिमें शास्त्र-विश्वासमयी श्रद्धा ही एकमात्र हेतु है और रागानुगा-

भक्तिमें भावमाधुर्य-लोभमयी श्रद्धा ही एकमात्र हेतु है।

एकमात्र श्रद्धा ही—चाहे वह विश्वासमयी हो अथवा लोभमयी हो—दोनों प्रकारकी शुद्धभक्तिके अधिकारका हेतु है।

वैधीभक्तिके अधिकारी तीन प्रकारके होते हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं—

'उत्तमो मध्यमश्च स्यात् कनिष्ठश्चेति स त्रिधा।'

उत्तम अधिकारीका लक्षण—

शास्त्रे युक्तौ च निपुणः सर्वथा दृढनिश्चयः।
प्रौढ़श्रद्धोऽधिकारी यः स भक्तावुत्तमो मतः॥

—अर्थात् जो शास्त्र और युक्तिमें निपुण और सब प्रकारसे दृढ़-निश्चय होते हैं, वे उत्तम और प्रौढ़श्रद्धायुक्त अधिकारी हैं।

मध्यम वैधभक्तिके अधिकारीका लक्षण—

यः शास्त्रादिष्वनिपुणः श्रद्धावान् स तु मध्यमः।

—शास्त्र आदिमें निपुणप्राय और श्रद्धालु व्यक्ति ही मध्यम हैं अर्थात् कठिन तर्क आदि उपस्थित होने पर उसका उत्तर देनेमें तो समर्थ नहीं होते, परन्तु मन-ही-मन अपने सिद्धान्त पर दृढ़ताके साथ श्रद्धा कायम रखते हैं।

कनिष्ठका लक्षण—

'यो भवेत् कोमलश्रद्धः स कनिष्ठो निगद्यते।' कनिष्ठ भक्त शास्त्र आदिमें कुछ-कुछ निपुण होते हैं और उनकी श्रद्धा कोमल अर्थात् कच्ची होती है। युक्ति और तर्क आदिसे उनकी श्रद्धाको बदला जा सकता है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि इन तीन प्रकारके श्रद्धालु व्यक्तियोंमें ही शास्त्र-विश्वास और शास्त्रके अधीन युक्ति-मिश्र श्रद्धा देखी जाती है। रागानुगा-भक्तिके अधिकारियोंके लोभके तारतम्यानुसार उन्हें भी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ, इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है।

उपसंहारमें वक्तव्य यह है कि मानव मात्रका भक्तिमें अधिकार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज, गृहस्थ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी, सबका भक्तिमें अधिकार हो सकता है—बशर्ते उनका शास्त्र और साधु-गुरुकी वाणियों के प्रति श्रद्धा हो। पढ़ लिख कर शास्त्र-अध्ययन द्वारा हो अथवा अनपढ़ होने पर सत्सङ्गमें शास्त्रके सिद्धान्तोंका श्रवण द्वारा ही हो, शास्त्र-निर्णीत भक्तिकी सर्वोत्तमताका बोध होते ही ऐसा कहा जा सकता है कि उस व्यक्तिको श्रद्धा हो गयी है। अथवा भगवान्की लीला कथाओंका श्रवण करते-करते रागात्मिक भक्त व्रजवासियोंके अनुगत होनेसे जब लोभमयी श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, तब भी ऐसा कहा जा सकता है कि उसका शुद्धभक्तिमें अधिकार हो गया है। ज्ञान, वैराग्य, विवेक धर्मचर्चा, शम-दम और योगाभ्यासके साधनोंसे भक्तिका अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। साम्प्रदायिक दीक्षा लाभ करने पर भी जब तक उत्तम अधिकारी नहीं हुआ जाय, तब तक उक्त उत्तमा भक्तिमें प्रवेश नहीं होता। उनकी भक्तिको भक्त्याभास कहा जा सकता है। उत्तम अधिकार प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करनेकी नितान्त आवश्यकता है। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब कि सत्सङ्गमें श्रवण और कीर्त्तन किया जाय। श्रवण-कीर्तनमें अत्यन्त आग्रह और उस समय अश्रु-पुलक और-नृत्य आदि भाव दिखलानेसे ही उत्तमधिकार प्राप्त हो गया है—ऐसा कदापि नहीं समझना चाहिए। क्योंकि उक्त लक्षण-समूह भक्त्याभासमें भी प्रकाश पाते हैं। शुद्धभक्तिके प्रारम्भमें जो थोड़ी बहुत आर्द्रता और स्वरूपलाभके विषयमें आग्रहता देखी जाती है, वह भक्त्याभासगत चरम लक्षणके प्रतिफलन रूप मूर्च्छा आदिसे भी अतिशय श्रेष्ठ होती है। अतएव हमें विशेष सावधानीके साथ शुद्ध भक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रबल प्रयत्न करना चाहिये। भक्ति अधिकार किस प्रकारसे पाया जाय—इसके लिये विशेष चेष्टा होनी चाहिये, नहीं तो भगवत्प्राप्तिकी कोई सम्भावना नहीं। विश्ववैष्णवदास निम्नलिखित श्लोकोंका प्रचार करते हैं—

श्रद्धा लोभात्मिका या सा विश्वासरूपिणी यदा ।
जायतेऽत्र तदा भक्तौ नृमात्रस्याधिकारिता ॥१॥
न सांख्यं न च वैराग्यं न धर्मो न बहुज्ञता ।
केवलं साधुसङ्गोऽयं हेतुः श्रद्धोदये ध्रुवम् ॥२॥
श्रवणादि-विधानेन साधुसंग-बलेन च ।
अनर्थापगमे शीघ्रं श्रद्धा निष्ठात्मिका भवेत् ॥३॥
निष्ठापि रुचितां प्राप्ता शुद्धभक्त्यधिकारिताम् ।
ददाति साधके नित्यमेषा प्रथा सनातनी ॥४॥
असत्संगोऽथवा भक्तावपराधे कृते सति ।
श्रद्धापि विलयं याति कथं स्याच्छुद्धभक्तता ॥५॥
अतः श्रद्धावता कार्यं सावधानं फलाप्तये ।
अन्यथा न भवेद्भक्तिः श्रद्धा प्रेम-फलात्मिका ॥६॥

—लोभात्मिका या शास्त्र-विश्वास रूपिणी श्रद्धा-का जब उदय होता है, तभी मानवमात्रका शुद्धभक्ति-में अधिकार उत्पन्न होता है। सांख्य, वैराग्य, वर्णाश्रम-धर्म अथवा पाण्डित्य श्रद्धा उत्पन्न होनेके हेतु नहीं हैं। श्रद्धाके उदयका हेतु है—एकमात्र ऐसे साधुका सङ्ग, जो श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंके अतिशय प्रेमी हों। श्रद्धाके उदय होते ही कनिष्ठाधिकार उत्पन्न हो जाता है। जब श्रवण आदि साधन भक्तिके अनुशीलन और सत्सङ्गके प्रभावसे अनर्थ दूर हो जाता है तथा श्रद्धा कुछ गाढ़ी होकर निष्ठात्मिका हो जाती है, तब शुद्धाभक्तिमें मध्यमाधिकार पैदा होता है। पुनः श्रवणादि साधन भक्तिका अनुष्ठान करते-करते एवं अपनेसे उत्तम अधिकारवाले व्यक्तिके संग-प्रभावसे निष्ठा कुछ और गाढ़ी होनेपर रुचि-स्वरूप हो पड़ती है। जिस साधकको ऐसी रुचि पैदा हो जाय, वे उत्तमाधिकारी हैं। ऐसे उत्तमाधिकारी साधक ही शुद्धभक्ति लाभ करते हैं। यही शुद्धभक्ति प्राप्त होनेकी सनातनी प्रथा है। परन्तु इस साधन क्रममें यदि असत्सङ्ग अर्थात् विषयोंमें आसक्त या निर्विशेष चिन्तामें आसक्त व्यक्ति या व्यक्तियोंकासंग हो जाय अथवा शुद्धभक्तोंके प्रति अवज्ञा आदि किसी प्रकारसे अपराध हो जाय, तो कोमल और मध्यम दोनों प्रकारकी श्रद्धाएँ जड़से सुख जाती हैं और साधक शुद्धभक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसी दशा-में वह या तो छाया-भक्त्याभास और नहीं तो अधिक अपराध होने पर प्रतिबिम्ब भक्त्याभासमें आबद्ध हो पड़ता है। अतएव जब तक उत्तमाधिकार प्राप्त न हो जाय, तब तक श्रद्धालु पुरुषको विशेष सावधान रहना चाहिये, नहीं तो प्रेम फलात्मिका शुद्धभक्तिका पाना कठिन है।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

उपनिषदोंकी वाणियाँ

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपना तत्त्व प्रकाश करनेके लिये वेद और पुराण आदि शास्त्रोंको जगत्-में प्रकट किया है। मनुष्य द्वारा लिखे गये ग्रन्थोंमें भ्रम-प्रमाद आदि दोष रहते हैं, परन्तु भगवान् द्वारा प्रकाशित शास्त्र अपौरुषेय होनेके कारण भ्रम और प्रमाद आदि दोषोंसे रहित होते हैं।

वेद प्रधानरूपसे दो भागोंमें विभक्त हैं—मंत्रभाग और ब्राह्मण भाग। मंत्र-भागको 'संहिता' भी कहते हैं। संहिता या मंत्र-भागमें याग-यज्ञ आदि क्रियाओं और सत्कर्म आदिअनुष्ठानोंके विधि-निषेधोंका वर्णन है। ब्राह्मण भागको श्रुति या उपनिषद्भी कहते हैं। इस भागमें स्तोत्र, आत्मविद्या, उपाख्यान आदिका वर्णन है। संहिता—वेदका 'कायभाग' है, तो ब्राह्मण और तापनियाँ—अंग-प्रत्यंग हैं। उपनिषद् अंशको 'शिरो भाग' भी कहते हैं।

संहिता साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त है।

ऋक, साम और यजुः ! इन्हींका नाम—त्रयी है। इनमें यजुर्वेद संहिता दो भागोंमें विभक्त है—शुक्ल और कृष्ण।

उपनिषद्को श्रुति कहा गया है। 'गृह्य' और 'श्रौत' प्रयोग विधियोंको 'कल्प और 'स्मृति' कहा जाता है। श्रुतिमें तर्क-वितर्कका स्थान नहीं है। परन्तु लौकिक विचारोंके साथ श्रुतिके विचारोंका सामंजस्य स्थापन करनेमें कल्प और स्मृतिका महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रुतिका अर्थ दो प्रकारसे होता है। अपने शुष्क तर्क और जड़ पाण्डित्य पर निर्भर कर निर्विशेष तत्त्वके प्रतिपादन हेतु जो श्रुति-अर्थ किया जाता है, उसे अश्रौत निर्विशेष-अर्थ कहा जा सकता है। यह अर्थ कष्ट कल्पना द्वारा वेदके यथार्थ-अर्थको आच्छादित करता है। श्रौत-पथावलम्बी भगवद्भक्तजन तर्क-पन्थियोंके संशय, नास्तिक्य और क्लीव ब्रह्मवादकी अकर्मण्यता दिखलाकर श्रुतिका यथार्थ अर्थ प्रकाश करते हैं। यह अर्थ वेदका स्वाभाविक अर्थ है। इसमें सर्वशक्तिमान अप्राकृत सविशेष-तत्त्वका प्रतिपादन है। यही आम्नाय-परम्परासे चलता आ रहा शुद्ध अर्थ है।

तार्किकजन शब्दकी अज्ञरूढ़ि-वृत्तिका आश्रयकर तथा ऐन्द्रिक विचारोंका अवलम्बन कर जो शब्दार्थ प्रचार करते हैं, उसमें अनेकों दोष होते हैं। यह अर्थ केवल भगवद्विमुख स्वभाववाले लोगोंको ही रुचिकर होता है, महामंत्रके उपदेशक विष्णुके भक्तजन ऐसे अर्थसे सर्वदा दूर रहते हैं। शब्दोंको तीन भागोंमें बाँटा गया है—यौगिक, रूढ़ और योग रूढ़।

प्रकृति और प्रत्ययार्थके योगसे जो शब्द बने हैं वे यौगिक शब्द हैं; जैसे—'पावक'।

प्रकृति और प्रत्ययके अर्थके मिलनेसे जो सब अर्थ उत्पन्न होते हैं, उनमें केवल प्रसिद्ध अर्थ ही 'योग-रूढ़' कहा जाता है; जैसे—पंकज। प्रकृति-प्रत्ययके योगसे उत्पन्न अर्थ न होकर कोई दूसरा ही अर्थ प्रकाशित होने पर उसे 'रूढ़' कहते हैं। जैसे—'मण्डप' रूढ़ि दो प्रकारका होता है—अज्ञ रूढ़ि और विद्वद् रूढ़ि। अज्ञ अर्थात् मूर्ख लोगों द्वारा किया गया अर्थ अज्ञरूढ़ि अर्थ कहलाता है। तथा सच्चे विद्वान् व्यक्तियोंके द्वारा किये गये अर्थको विद्वद्रूढ़ि अर्थ कहते हैं।

उपनिषद् शब्दका अर्थ है—

'उप-नि-पूर्वकस्य विशरणगत्यवसादनार्थस्य 'षद्' 'लृ'-धातोः क्विप प्रत्ययान्तस्येदं तत्र 'उप' उपगम्य गुरुपदेशात् लब्धेति यावत्। उपस्थितत्वाद् ब्रह्मविद्यां निश्चयेन तन्निष्ठतया ये दृष्टानुश्रविक-विषयवितृष्णाः सन्तः तेषां संसार-बीजस्य सद्-विशरण-कर्त्री शिथिलयित्री अवसादयित्री विनाशयित्रि ब्रह्म-गमयत्रीति।'

(चैतन्यचरितामृत भाष्यमें श्रील प्रभुपाद)

भावार्थ यह है कि जो भोग-विषयोंसे विरक्त हो कर श्रीगुरुके चरणोंका आश्रय करते हैं और श्रद्धापूर्वक उपनिषदकी वाणियोंका श्रवण करते हैं, उनका संसार-बीज नष्ट हो जाता है—संसार-वासना क्षीण हो जाती है और वे भगवत्-धाममें प्रवेश करनेकी योग्यता लाभ करते हैं। उपनिषदोंकी संख्या १०८ है। मुक्तिको उपनिषदमें इसका उल्लेख पाया जाता है। इनमेंसे दस उपनिषदोंके ऊपर श्रीशङ्कराचार्यने भाष्य लिखे हैं। इसलिये बहुतोंकी धारणा यह है कि ये दस उपनिषद ही प्रामाणिक हैं और इनके अतिरिक्त १०० उपनिषद निर्भर योग्य नहीं हैं। परन्तु यह उनकी भूल है।

शास्त्रोंको दो भागोंमें विभक्त किया गया है—श्रुति और स्मृति। इनमें श्रुति प्रधान है। श्रुति और स्मृतिमें विरोध दिखलायी पड़ने पर श्रुतिके वचन प्रमाण रूपमें ग्रहण करना चाहिये। श्रुतिके अनुगत स्मृतिके वचन भी ग्रहण योग्य हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेवश्रौती महाराज

श्रीमद्भागवतकी रचना

परम कारुणिक श्रीमद् वेदव्यासने ही सर्वप्रथम वेदकी बिखरी हुई वाणियोंका संग्रह कर उन्हें लिपि-बद्ध किया, पुराण, महाभारत और वेदान्त-सूत्र आदि शास्त्र-ग्रन्थोंकी रचनाएँ की। इनके पहले अर्थात् प्राक् वैदिक युगमें वेदादि शास्त्र आजकल की तरह छपी या लिखी पुस्तकोंके आकारमें नहीं होते थे। सद्गुरु शिष्यको वेदका श्रवण कराते थे। इसलिये वेदको श्रुति भी कहते हैं। उस समयके लोग इतने मेधावी और श्रुतिधर होते थे कि वे किसी विषयको एक बार सुन लेने पर उसे जीवन भर भूलते न थे। श्रीमद्भगवद्गीता इसका ज्वलंत उदाहरण है। कुरुक्षेत्र के मैदानमें कौरव और पाण्डवोंकी विराट-विराट सेनाएँ आमने-सामने युद्धके अंतिम छोर पर खड़ी हैं। केवल सेनापतिकी आज्ञाकी देर है, वीरोंके हाथ अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों पर और आँखें शत्रु-सेना पर हैं। ऐसे समयमें अकस्मात अर्जुनको मोह उत्पन्न होता है। यद्यपि अर्जुन मायासे परे मुक्त पुरुषोंके भी वंदनीय परम भगवद्भक्त हैं, तथापि जगत्के कल्याण-के लिये भगवान्की योगमायाके प्रभावसे वे माया द्वारा मोहित होनेका अभिनय करते हैं और भगवान् कृष्ण भी लोक-शिक्षाके लिये उसी रणक्षेत्र में अर्जुन को गीताका श्रवण करते हैं। ऐसी नाजुक दशामें अर्जुनको सम्पूर्ण गीता सुननेमें अधिकसे अधिक आधे घंटेका समय लगा होगा।

अस्तु, विचारणीय यह है कि जिस गीताको समझने-बुझने में आजकलके बड़े-बड़े विद्वानोंको वर्ष के-वर्ष ही नहीं, जीवन तक बीत जाता है, फिर भी शायद ही वे गीताका यथार्थ अर्थ ग्रहण कर पाते हैं, उसी गीताको अर्जुन इतने कम समयमें ठीक-ठीक समझ लिये और उनका मोह दूर हो गया,—यह कैसे संभव हुआ? संभव इसलिये हुआ कि तत्का-लीन मानव बड़े मेधावी, श्रुतिधर, ज्ञानी और एका-ग्रचित्त होते थे। उनका चरित्र बड़ा ही उच्चकोटि का और निर्मल होता था। शम, दम, तितिक्षा, ब्रह्म-चर्य दया आदि समस्त सद्गुणोंसे वे अलंकृत होते थे। इसलिये उनको वेदादि शास्त्रोंके अध्ययनमें लिखित पुस्तकोंकी आवश्यकता नहीं होती थी, केवल श्रवणसे ही काम चल जाता था। जिस विषय-को एक बार गुरुमुखसे सुन लेते थे, वह विषय उनके मानस पटल पर पत्थरकी रेखाकी तरह अंकित हो जाता था।

परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, मानव में उक्त गुणोंका क्रमशः ह्रास होता गया। आजकलके लड़के अपने पूर्वजोंकी तरह मेधावी नहीं होते। श्रीमद्भागवतमें कलियुगकी अवस्थाका वर्णन करते हुए श्रीव्यासदेवजीने लिखा है—

> तत्रश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया।
> कालेन बलिना राजन् नङ्क्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः॥
> वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः।
> धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि॥
> (श्रीमद्भा० १२।२ १-२)

—परीक्षित! समय बड़ा बलवान् है। ज्यों-ज्यों घोर कलियुग आता जायगा, त्यों-त्यों उत्तरोत्तर धर्म-सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरण शक्तिका लोप होता जायगा। कलियुगमें धन ही उच्च-कुल, सदाचार, गुण, धर्म और न्याय आदिका लक्षण होगा। जिसके हाथमें शक्ति होगी वही धर्म और न्यायकी व्यवस्था अपने अनुकूल करा सकेगा। धनके बल पर मूर्ख भी विद्वान कहलायेगा।

इस विषयमें अधिक कुछ कहनेकी आवश्यकता

नहीं, क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य आज इस बातका अच्छी तरहसे अनुभव कर रहे हैं।

श्रीवेदव्यास इस बातको अच्छी तरहसे जानते थे कि भविष्यमें कैसी भयंकर दुर्दशा होनेवाली है। इसलिये उन्होंने वेदके चार विभाग किये, वेदोंके परिपूरक पुराणोंका प्रकाश किये तथा पंचम वेद—महाभारतकी रचना की। तत्पश्चात निरीश्वर दार्शनिकोंके निरीश्वर विचारोंका खंडन कर सेश्वर विचार अर्थात् पुरुषोत्तम विचार की स्थापना करनेके लिये तथा समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य एक है—इसका समन्वय करनेके लिये उन्होंने वेदान्त-सूत्रकी रचना की। इस प्रकार सभी शास्त्रोंकी रचना प्रायः एक ही काल में हुई। कुछ लोग पौराणिक युग और वैदिक युग—दो युगोंकी कल्पना कर इनको अलग-अलग मानते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। वे यह नहीं जानते कि पुराण—वेदका ही परिशिष्ट भाग है। जैसे महाभारत है। स्त्री, शूद्र तथा वैश्योंको वेदके निगूढ़ तत्वोंको सहज सरल भाषामें समझानेके लिये ही महाभारत की रचना हुई; इसीलिये इसका नाम है—पंचम वेद। महाभारतमें व्यासदेवने यह शिक्षा दी है कि समस्त प्रकारके नैमित्तिक धर्मोंका—अनित्य धर्मोंका त्याग कर मनुष्यको एकमात्र भागवत-धर्मका ही आश्रय लेना चाहिए,भगवान्को परम-तत्त्व जान कर तन-मन-वचन से उनकी शरणापत्ति ग्रहण करना ही भागवत-धर्मका ग्रहण करना है। उन्होंने महाभारतके ऐतिहासिक-प्रसंगके माध्यमसे ही भगवद्गीता जैसे अपूर्व उपदेशामृतका जगत्में वितरण किया है।

बहुतसे आधुनिक कहानी लेखक और उपन्यासकार भी अपनी कहानियों और उपन्यासोंमें ऐतिहासिक घटनाओंका समावेश करते हैं। यह तो एक साहित्यिक योजना है। पुराणोंमें भी इसी प्रकार वेदके निगूढ़ तत्वोंको सहज, सरल और बोधगम्य शैली द्वारा व्यक्त किया गया है। कुछ लोग मौखिक रूपमें वेदको तो मानते हैं, परन्तु पुराण, रामायण, महाभारत आदिको नहीं मानते। ऐसे लोग स्वेच्छाचारी हैं। स्वेच्छाचारी व्यक्ति वेदका तात्पर्य कभी समझ नहीं पाते हैं। उनका कहना है कि वेदाध्ययनमें केवल ब्राह्मणोंका ही अधिकार है और ब्राह्मणसे उनका तात्पर्य है—ब्राह्मणके वंशमें पैदा हुआ व्यक्ति। 'ब्राह्मण'—शब्दका यह अति संकुचित अर्थ है। यह बात ठीक है कि वेद में केवल ब्राह्मणका ही अधिकार है; परन्तु 'ब्राह्मण'—शब्द का यथार्थ तात्पर्य उन व्यक्तियोंसे है, जिनमें शास्त्रोचित ब्राह्मणके गुण और स्वभाव पाये जाँय। यदि यह अर्थ ग्रहण न किया जाय तो श्रुतियोंका अनर्थ हो जायगा।

वेद-अध्ययनमें केवल ब्राह्मणका ही अधिकार है—ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि बिना ब्राह्मण हुए वेद पढ़नेका-समझनेका अधिकार नहीं होता है। जैसे यह कहा जाय कि ग्रैजुयेट हुए बिना 'लॉ' का अध्ययन नहीं किया जा सकता है, तो इसमें क्या दोष है? इसका तात्पर्य यह है कि कमसे कम बी० ए० के स्टैण्डर्ड तक पढ़े बिना कानूनी पुस्तकोंको समझना कठिन है। उसी प्रकार ब्राह्मणता प्राप्त हुए बिना वेदोंका तात्पर्य ग्रहण करना असंभव है। जन्मसे सभी शूद्र माने गये हैं; संस्कार होने पर द्विजत्व लाभ होता है। अर्थात् उपनयन संस्कार के पश्चात् ब्रह्मचारी आचार्यसे वेद अध्ययन करता है। पहले वेद-अध्ययनके पूर्व कर्णवेध संस्कार होता था। कर्णवेध-संस्कार तात्पर्य यह है कि वेदवाणी श्रवण करानेके पहले ब्रह्मचारीके कानसे उन समस्त गन्दी बातोंको—अवैदिक बातोंको निकाल दिया जाय, जिन्हें वह अब तक सुन रखा है। पश्चात् उसे पवित्र वेद-वाणीका श्रवण कराया जाता था। परन्तु हरेकको ऐसी सुविधा संभव नहीं। इसलिये जिनको ऐसी सुविधा प्राप्त न हो, उनके लिये ही करुणावरुणालय श्रीवेदव्यासने कृपा कर पुराण और महाभारतके आविष्कार किये हैं।

उपरोक्त सिद्धान्तकी रक्षाके लिये ही मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने एक शूद्रकी हत्याकी थी। शूद्रका दोष यह था कि वह शूद्र रह कर ही वेद अध्ययन कर रहा था—वैदिक क्रियाओंका आचरण कर रहा था। वह अपने अधिकारकी सीमासे बाहर जा रहा था। अनाधिकारी व्यक्ति यदि वेद-पाठ करे तो उससे वह जगतका नाश ही करेगा; इसीलिये वह वध करने ही योग्य है। भगवान् श्रीरामचन्द्र शूद्र जातिसे घृणा करते थे—ऐसी बात न थी। गुह और शबरीके साथ उनके व्यवहार ही इस बातके प्रमाण हैं। भगवान् सबके लिये समान हैं। उनका कोई भी शत्रु और मित्र नहीं। परन्तु यदि कोई अन्याय करे तो उसका उचित न्याय करना शासकका एकान्त कर्त्तव्य है। भगवान् स्वयं आचरण करके सबको शिक्षा देते हैं कि मनुष्यका कैसा आचारण होना चाहिये।

हम पहले ही कह आये हैं कि संस्कार-शून्य व्यक्तिको शूद्र कहते हैं—'जन्मना जायते शूद्र'। परन्तु संस्कार लाभ करने पर उसे द्विज अर्थात् ब्राह्मण माना जायगा। 'हरिभक्तिविलास' में ऐसा स्पष्ट निर्देश है—'तथा दीक्षा विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम'। वेद-पाठकी योग्यता प्राप्तिके लिये शिष्यको सद्गुरुके निकट कलियुगमें पांचरात्रिकी दीक्षाका ग्रहण करना आवश्यक है। संस्कार शून्य शूद्र यदि शास्त्र विधियों-का उल्लंघन करें तो उसका शासन होना ही चाहिये। कलियुगमें प्रायः सभी शूद्र हैं, क्योंकि संस्कार रहित हैं।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने केवल शूद्रको ही मारा है, ऐसी बात नहीं। उन्होंने ब्राह्मण कुलमें पैदा हुए स्वेच्छाचारी रावणका भी तो वध किया है। अतः श्रीरामचन्द्रने कहीं भी पक्षपात या अन्याय नहीं किया है।

अस्तु पुराण और महाभारत वेदमें अनाधिकारी व्यक्तियोंके भी कल्याणके लिये उदित हुए हैं। अतः वेदानुग शास्त्र हैं। इसी प्रकार वेदान्त, उपनिषद्, रामायण और दूसरे-दूसरे शास्त्र, जो गुरु-परम्परासे स्वीकृत होते चले आ रहे हैं, सभी वेदानुग हैं। पुराणोंमें श्रीमद्भागवतका स्थान सबसे ऊँचा है—'पुराणानामिदं तथा' (श्रीमद्भा० १२।१३।१६)। अतः इसके वेदानुग होनेमें कोई संदेह ही नहीं उठ सकता। श्रीमद्भागवत् समस्त वैदिक शास्त्रोंका समष्टिज्ञान-भण्डार है। यह ब्रह्मसूत्रका अर्थ, महा-भारतका तात्पर्य-सार, गायत्रीका भाष्य और सम्पूर्ण वेदका सार है। ऐसे पुराण-रत्न शास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवतकी रचना कब और कैसे हुई—यह बतलानेके लिये ही प्रस्तुत प्रबन्धका प्रयास है।

कलियुगके प्रारम्भसे ही मानव पशुत्वकी ओर क्रमशः बढ़ता चला जा रहा है। आज मनुष्य पढ़ लिख कर गदहा बनता है, मनुष्य नहीं। प्रमाणकी आवश्यकता नहीं, 'फलेन परिचियते'—फलसे ही परिचय मिलता है। यदि वे गदहा न होते तो विज्ञान की इतनी उन्नति और विद्याका इतना व्यापक प्रसार होने पर भी क्यों एक मनुष्य दूसरेको अपना शत्रु समझता है? आज क्यों एक जाति दूसरी जातिसे इतनी भयभीत है? दो राष्ट्र आपसमें गधे और कुत्ते-की तरह परस्पर क्यों लड़ते हैं? एक देशसे दूसरे देशमें जानेमें रोक क्यों है? मनुष्य इतने धन लोलुप, कामी, दुश्चरित्र, झूठा, निर्दय, हिंसाप्रिय और दुर्गुणोंका घर क्यों बन गया है? आज न्याय और ईमानदारीका गला क्यों घोंटा जा रहा है? अपनेको शिक्षित कहनेका दम भरनेवालोंमें ठगी, चोरबाजारी, घूस और अनैतिकताका बोलबाला क्यों है? यह सब पशुत्वकी चरम सीमा नहीं तो क्या है? इसका प्रधान कारण है—भौतिक शरीर और मनको आत्मा अर्थात् 'मैं' मानना। और पशुत्व भी इसीको कहते हैं। मनुष्य शरीर पाकर भी जो पशु धर्ममें—आहार, विहार, निद्रा और भय आदि धर्ममें ही जीवन कटाते हैं, उन्हें श्रीमद्भागवतमें गदहा कहा गया है। यदि भौतिक स्थूल शरीरको अथवा सूक्ष्म शरीर मनको आत्मा माना जाय और इसी भौतिक ज्ञानकी भित्ति पर आगेकी ओर बढ़ा जाय तो उसे पशुत्व नहीं तो और क्या कहा जाय?

मानव जातिको पशुधर्मसे ऊपर उठा कर आत्म-धर्ममें प्रतिष्ठित करनेके लिये भगवान्‌ने सबसे पहले ब्रह्माको शब्द-ब्रह्म—वेदका उपदेश किया था। पश्चात् ब्रह्माजीने नारदको और नारदजीने वेदव्यासको वह वेद-ज्ञान प्रदान किया था। व्यासदेवजी कृपा कर केवल भारतीयों और हिन्दुओंके लिये ही नहीं, मानव मात्रके कल्याणके लिये उसे ऋचाराकारमें प्रकाशित किया है। श्रीवेदव्यासरूपी अप्राकृत निर्झरसे जो-जो वेद-ज्ञानरूपी सरिताएँ प्रकटित हुई हैं, उनमें श्रीमद्-भागवत रूपी वेदज्ञान ही जगत-पावनी अमृत सलिला जाह्नवी है। (क्रमशः)

—श्री अभयचरण भक्ति वेदान्त
एडिटर—बैक टु गौडहेड

श्रीश्रीगौरांग देव स्वयं भगवान हैं

भगवान श्रीगौरांग देवने समय-समय पर अनेकों भक्तोंको अपने विभिन्न भगवत्स्वरूपोंका दर्शन कराये हैं। श्रीचैतन्य-चरितामृत और श्रीचैतन्यभागवतके कतिपय स्थलोंका हम उल्लेख करते हैं। आशा है, इसे पढ़ कर उनलोगोंका भ्रम दूर हो जायगा जिनलोगोंको श्रीचैतन्य महाप्रभुको भगवान होने में संदेह है।

(१) ब्राह्मणको अष्टभुज रूपका दर्शन

बालक निमाई (श्रीगौरांग) की चंचलता दिन-दिन बढ़ती जारही है। माता-पिता और पड़ोसी उसकी अद्भुत लीलाओंको देखकर बड़े हैरान थे। कभी सोचते यह या तो कोई देवता है अथवा कोई महापुरुष। उसके भुवनमोहन रूप, चंचल और परम अद्भुत बाल्य-क्रीड़ाओंको देखकर तथा स्मरण कर वे मुग्ध हो पड़ते थे। अब वह स्पष्ट बोलने भी लगा है। एक दिन की बात है बालगोपाल की उपासना करनेवाले एक ब्राह्मण तीर्थ-पर्यटन करते हुए मायापुर पहुँचे और (निमाईके पिता) श्रीजगन्नाथ-मिश्रके अतिथि हुए। जगन्नाथमिश्र और उनकी सती-साध्वी सहधर्मिणी श्रीशचीदेवीने ब्राह्मण-अतिथिका खूब आदर सत्कार किये और रसोईकी सभी सामग्री उनके सामने रखकर विनयपूर्वक उनसे रसोई बनाकर भोजन करनेके लिये कहा। ब्राह्मण दम्पतिके प्रीतिपूर्ण आग्रहको टाल न सके। रसोई तैयार होने पर उन्होंने थाल और केलेके पत्तेमें परोसा और तुलसी पत्र डालकर आँखोंको बन्द किये श्रीगोपालजीका ध्यान करने लगे। ध्यान समाप्त होनेपर आचमन देनेके लिये ज्यों ही आँखें खुली तो वे चौंक पड़े—अरे! चंचल बालकने गोपालजीका भोग नष्ट कर दिया।' कोलाहल सुनकर मिश्र और शचीदेवी दौड़ी आयीं। देखा—बालक निमाई भोगकी थालसे एक ग्रास मुखमें रखकर खा रहा था, कुछ आस पास बिखेर रहा था और कुछ अपने शरीरमें लेप रहा था। मिश्रजी अपने क्रोधको रोक न सके। वे निमाईको मारने दौड़े। परन्तु ब्राह्मणके मना करने तथा समझाने बुझानेसे शान्त हुए।

सबके अनुरोध करनेपर ब्राह्मणने दूसरी बार रसोई बनाना स्वीकार किया। शचीदेवीने दुबारा चौका लगाया रसोईकी पूरी सामग्री भी पुनः प्रस्तुत कर दिया। पश्चात् निमाईको लेकर पड़ोसीके घर चली गयीं। ब्राह्मणने दूसरी बार रसोई बनाई और पहलेकी भाँति आँख बन्द कर बाल-गोपालको अर्पण करने लगे। परन्तु बाल-गोपालको तो अपना साक्षात् दर्शन देकर अपने भक्तके जन्म-जन्मान्तरकी साधनाको सफल

बनाना था। ठीक इसी समय शचीमाता निमाईको सोता छोड़कर पल भरके लिये कहीं गयीं। इधर निमाई क्षण भरमें ब्राह्मणके लगाये भोगकी थालके पास पहुँच कर उसमेंसे एक ग्रास अन्न लेकर आनन्द से खाने लगे। आहट पाकर ब्राह्मणकी आँख खुली तो उसी बालकको पुनः भोग नष्ट करते देखकर चिल्ला उठा—'अरे! क्या किया, फिर भोग नष्ट कर दिया।' ब्राह्मणका शोरगुल सुनकर जगन्नाथ मिश्र और शची-देवी दोनों फिर दौड़े आये। निमाईको खाते देखकर मिश्रके क्रोधकी सीमा न रही। वे हाथमें डंडा लेकर गर्जन-तर्जन करते हुए उसे मारने दौड़े। परन्तु ब्राह्मणके अनुरोध और शपथ दिलानेके कारण मार न सके।

जगन्नाथ मिश्र क्रोधको पी तो गये, परन्तु माथे पर हाथ रखकर वहीं बैठ गये। क्या करते? उनके ही आग्रहसे ब्राह्मणने एक बार नहीं, दो-दो बार रसोई बनायी। परन्तु उद्धत बालक खाने दे तब तो। अब किस मुँहसे वे तीसरी बार रसोई बनानेके लिये अनुरोध करें। शचीदेवी भी लज्जित थीं। उसी समय निमाईके बड़े भाई विश्वरूप पाठशालासे लौटे। वे बड़े ही तेजस्वी, गंभीर और सर्वोपरि बड़े ही सुन्दर थे। उनकी वाणीमें प्रेम और आकर्षण था। वे बात की बातमें सब कुछ समझ गये। उन्होंने ब्राह्मणके चरणोंमें प्रणाम कर बड़ी नम्रतासे पुनः भोजन बनाने का अनुरोध किया। ब्राह्मण विश्वरूपके प्रेममें पगे आग्रहको भला कैसे टाल सकते थे। तीसरी बार रसोई चढ़ी।

अब तक रात अधिक बीत चुकी थी। निमाई पड़ोसिनके घरमें सो गया था। जगन्नाथ मिश्र उस घरके दरवाजे पर बैठकर पहरा दे रहे थे। रसोईके पश्चात् ब्राह्मणने तीसरी बार बालगोपालका ध्यान किया। और पुनः वही चंचल बालक हँसते-हँसते भोगकी थालमें हाथ लगा दिया। ब्राह्मण पुनः चिल्लाये। परन्तु योगमायाके प्रभावसे सभी ऐसे सो रहे थे कि किसीको कुछ मालूम ही न हुआ। ब्राह्मणको इस प्रकार हैरान देखकर बालक निमाईने हँसते-हँसते कहा—'विप्र! तुम जब मुझे बार-बार बुलाते हो, तो मैं कैसे न आऊँ? इसमें मेरा क्या दोष है? तुम अभी तक मुझे पहचान नहीं सके। तुम मेरे जन्म-जन्मके भक्त हो, मैं तुम्हारी भक्तिसे बड़ा प्रसन्न हूँ। लो, देखो'। कहते-कहते अपना अष्टभुज-रूप प्रकट किया। कदम्ब वृक्षके नीचे अति मनोहर नव-घन-श्याम नवकिशोर मूर्त्ति, आठ भुजाएँ। चारमें शंख, चक्र, गदा और पद्म; एकमें माखन, दूसरे से उठाकर खा रहे हैं; शेष दो हाथोंसे मुरली बजा रहे हैं। सिर पर मोर-पंख, गलेमें वैजन्ती-माला और कानोंमें कुण्डल। आस पास चारों ओर ग्वाल-बाल, गोप-गोपियाँ और बछड़े। ब्राह्मण स्थिर न रह सके, मूर्छित होकर गिर पड़े।

करुणासागर भगवान श्रीगौर-सुन्दरने अपने कोटिचंद्र सुशीतल कर-कमलोंको ब्राह्मणके सिर पर रख दिया। ब्राह्मणको चेतना हुई। वे हाथ जोड़कर गद्गद् वाणीसे भगवानका स्तव करने लगे। गौरहरिने प्रसन्न होकर ब्राह्मणको प्रेम भक्तिका वरदान दिया और उसे इस रहस्यका भेद खोलनेसे मना कर पुनः बालकवत हो गये तथा पुनः पहलेवाले घरमें जाकर सो गये। ब्राह्मणकी आँखोंसे आसूँओंकी धारा निकल रही थी। वह अपने भाग्यकी सराहना करते-बड़े प्रेमसे महाप्रसाद पाया। श्रीचैतन्यभागवतमें श्रीगौरांगदेवके अष्टभुजरूपका वर्णन इस प्रकार है—

> सेइ क्षणे देखे विप्र परम अद्भुत।
> शंख, चक्र, गदा पद्म,—अष्टभुजरूप॥
> एक हस्ते नवनीत, आर हस्ते खाय।
> आर दुइ हस्ते प्रभु मुरली बजाय॥
>
> (चै० भा० आ० ५-१२७-१२८)

(२) दिग्विजयीको स्वप्नमें श्रीगौरांगदेवका परिचय मिला

नवद्वीपमें चारों ओर दिग्विजयीकी चर्चा है। घर-घरमें, पथ, घाट और बाजारमें, पाठशालाओंमें जहाँ कहीं भी दो चार छात्र या अध्यापक परस्पर मिल जाते, दिग्विजयीकी चर्चा छिड़ जाती। कोई कहता—'इनका नाम केशव काश्मिरी है, सरस्वतीकी सिद्धि है। शास्त्रार्थके समय सरस्वती स्वयं इनकी जिह्वा पर निवास करती हैं। ये सम्पूर्ण भारतकी पण्डित-मण्डलीको पराजित कर नवद्वीप पहुँचे हैं। यहाँ की विजय पर ही दिग्विजयकी सम्पूर्णता निर्भर करती है।' कोई कहता—'भाई! ऐसा प्रकाण्ड पाण्डित्य मैंने कभी नहीं देखा। नवद्वीपकी लज्जा भगवान् ही बचावें, तो बचे, अन्यथा उसे पराजित करना मनुष्यकी शक्ति से बाहरकी बात है।' इस प्रकार अपनी-अपनी समझके अनुसार सभी इस चर्चामें भाग ले रहे हैं। कुछ विद्यार्थियोंने निमाई पण्डित (श्रीगौरांगदेव) को इस बातकी सूचना दी। वे बोले—पण्डित जी! एक दिग्विजयी पण्डित सारे भारतको विजय कर यहाँ आया है। उसने यहाँ के पण्डितोंको शास्त्रार्थके लिये ललकारा है। उसे अपने पाण्डित्यका बड़ा गर्व है। सुनते हैं, उसे सरस्वती का वर प्राप्त है। यहाँ के सभी पण्डित डर गये हैं। इसबार नवद्वीपकी लज्जा बचनी असंभव जान पड़ती है।'

उनकी बात सुनकर निमाई पण्डितने कहा—'दर्पहारी भगवान किसीका दर्प रहने नहीं देते। जब रावण, वेण, बाण और नरकासुर आदिके दर्प क्षणभरमें चूर्ण-विचूर्ण कर डाले, तो इस पण्डितकी तो बात ही क्या है? अभिमानीका अभिमान अवश्य ही चूर्ण होगा।' ऐसा कह कर वे छात्रोंके साथ गंगाके उस घाट पर गये, जहाँ दिग्विजयी पंडित शामको टहलने आया करता था।

संध्याका समय है। पुण्यतोया जाह्नवी बड़े वेगसे कल-कल ध्वनि करती हुई प्रवाहित हो रही हैं। पूर्णचन्द्र अपनी सुशीतल और स्निग्ध चन्द्रिकाओंको पृथ्वीपर मुक्त हस्तसे लुटा रहा है। वे चन्द्रिकाएँ सुरसरिके शुभ्र अंकमें बिखर कर उसे अपूर्व सुन्दरी सजा रही थीं। उसमें चन्द्रका मनोहर प्रतिबिम्ब निरस हृदयमें भी सरसताका संचार कर रहा है। निकट ही सैकड़ों छात्रोंके बीचमें निमाई पण्डित देवताओंमें बृहस्पतिकी भाँति सुशोभित हैं। शास्त्रीय विषयोंकी चर्चा हो रही है। कोई खण्डन कर रहा है, कोई मण्डन। आवश्यकतानुसार निमाई पण्डित भी यदा-कदा हँसते हुए बोलते हैं।

इसी बीच दिग्विजयी अपने कुछ साथियोंके साथ टहलते हुए वहीं उपस्थित हुए और भगवती भागीरथीको प्रणाम कर मनोविनोदके लिये छात्र-मण्डलीमें चले गये। विद्यार्थियोंने बड़े आग्रहसे उन्हें बैठाया। वे भी पण्डित्यका अभिमान छोड़कर बालकोंमें बालक बन कर उनसे बातचीत करने लगे। छात्रोंके खण्डन-मण्डनका कोलाहल बन्द हो गया। वे कभी दिग्विजयीकी ओर देखते, कभी निमाई पण्डितकी ओर। किसीने संकेतसे निमाई पण्डितको बतला दिया कि ये ही दिग्विजयी हैं।

'भैया! तुम्हारा नाम क्या है? क्या पढ़ते हो?'—दिग्विजयीने निमाई पण्डितकी ओर स्मित हास्यपूर्वक देखा।

'ये यहाँके प्रख्यात अध्यापक निमाई पण्डित हैं'—एक मेधावी छात्रने निमाई पण्डितके कुछ बोलनेके पहले ही उत्तर दिया।

'ओ हो! आप ही निमाई पण्डित हैं! आपकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। आप व्याकरणके अध्यापक हैं न?'—दिग्विजयीने कुछ विस्मित होकर कहा।

निमाई पण्डित बातको पलटते हुए बड़े ही मधुर शब्दोंमें बोले—'आज हमारा परम सौभाग्य है। आपके दर्शनोंकी बड़ी लालसा थी। हम लोग आपके मुँहसे कुछ काव्य-रसका पान करना चाहते हैं। बड़ी कृपा होगी, यदि स्वरचित कोई काव्य सुनावें' दूसरे छात्रोंने भी इसका समर्थन किया।

दिग्विजयीको अपनी प्रतिभाका परिचय देनेका

अवसर मिला। उसने सगर्व हँसकर कहा—'क्या सुनना चाहते हो ?'

निमाई पण्डित बोले—'पाप-नाशिनी गंगाका कुछ माहात्म्य वर्णन किया जाय, जिसको सुनकर हमारे कर्ण भी पवित्र हों, साथ ही काव्य रसका आस्वादन भी किया जा सके।'

निमाई पण्डितकी बात सुनकर दिग्विजयी जलद-गंभीर स्वरमें धारा-प्रवाहसे गंगाकी महिमासूचक संस्कृत श्लोक बोलने लगे। श्लोक बिलकुल नये होते थे। खूबी यह कि इन नवीन श्लोकोंकी रचना करनेके लिये वे तनिक भी रुकते न थे, मानों कंठस्थ श्लोक सुना रहे हों। वे एकके बाद दूसरा श्लोक धड़ा-धड़ बोलते चले जा रहे थे। विद्यार्थी और उपस्थित श्रोतृमण्डली एक टक दिग्विजयीकी ओर देख रही थी। सभी चकित थे। घड़ी भर भी बीता न होगा कि वे सैकड़ों श्लोक सुनाकर चुप हो गये और विद्यार्थियों की ओर गर्वसे इस प्रकार देखने लगे, मानों कुछ चाह रहे हों।

निमाई पण्डित दिग्विजयीकी प्रसंशा करते हुए बोले—'आश्चर्य है! ऐसा सुन्दर काव्य हमने पहले कभी नहीं सुना। आप सचमुच बड़े विद्वान हैं। परन्तु हमें और भी आनन्द होगा, जब आप अपने रचित इनमेंसे एक श्लोककी व्याख्या करें और उसके दोष-गुणों पर प्रकाश डालें।'

दिग्विजयीने शब्दोंपर बल देते हुए कहा—'केशव काश्मिरीके काव्यमें दोष नहीं रहता; हाँ, यदि कहो तो व्याख्या सुनाऊँ और कुछ गुणोंको भी बतलाऊँ। बतलाओ किस श्लोक की व्याख्या करूँ ?' उन्होंने यह बात निमाई पण्डितको चुप करनेकी नीयतसे कहा; कारण उन्होंने सोचा कि मेरे श्लोक बिलकुल नवीन हैं, तिसपर भी मैं इतनी तेजीसे सुनाया हूँ कि इनमेंसे किसी भी एक श्लोकको ज्यों-का-त्यों बतलाना बिलकुल असंभव है।

निमाई पण्डितने अनायास ही जल-प्रवाहकी तरह उनमेंसे एक श्लोक ज्यो-का-त्यों सुनाकर उसकी व्याख्या करनेके लिये कहा।

यह देखकर दिग्विजयीके होश उड़ गये। उसकी प्रतिभा क्षीण पड़ने लगी। सबकी आँखें अब निमाई पण्डितके मुख पर जम गयीं। दिग्विजयीने सविस्मय पूछा—'जल-प्रवाहसे कहे गये बिलकुल नये सैकड़ों श्लोकोंमें से आपने बीचका एक श्लोक कैसे सुना दिया ?'

'यदि कोई सरस्वतीके वरसे कविवर हो सकता है, तो कोई श्रुतिधर भी तो हो सकता है। इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ? कृपया श्लोककी व्याख्या और उसके गुण-दोष बतलाइये।

दिग्विजयी विषरहित सर्पकी भाँति निष्प्रभ होकर उस श्लोककी व्याख्या करने लगा और उसके कतिपय अलंकार आदि गुणोंको बतला कर चुप हो गया। तब निमाई पण्डितने नम्रतासे कहा—'आज्ञा हो तो मैं भी इस श्लोकके गुण-दोषोंको बतलाऊँ।'

दिग्विजयी पर यह दूसरा प्रहार था। उसका हृदय बैठने लगा। व्याकरणका एक साधारण युवक-अध्यापक सरस्वतीके वरद पुत्रके श्लोकमें दोष निकालनेका साहस करता है! उसने मुख पर कृत्रिम हँसी लानेका प्रयत्न करते हुए कहा—'अच्छा! बतलाओ इस श्लोकमें कौन-कौनसे गुण हैं और कौन-कौनसे दोष हैं ?'

निमाई पण्डितने बेधड़क होकर परन्तु नम्रता पूर्वक उनके श्लोकमें पाँच गुण और पाँच दोष दिखलाये। दिग्विजयीका मुख नीचे हो गया। उसका दर्प चूर्ण-विचूर्ण हो गया। उसका सारा शरीर पसीनेसे तर बतर हो गया। वह प्रतिवादमें एक शब्द भी बोल न सका। यह देख कर कुछ विद्यार्थी ताली बजाकर हँसने लगे। परन्तु दूसरोंकी इज्जतकी कदर समझनेवाले निमाई पण्डितने उन्हें ऐसा करनेसे एकदम रोक दिया और दिग्विजयीकी ओर देखकर बोले—'आज अधिक देर हो गयी है। संध्याका समय बीत रहा है। कृपया आज्ञा दें, हम लोग घर जाँय। आप भी आज डेरे पर पधारें; कल फिर मिलेंगे।' इतना कह करके अपने छात्रोंके साथ खेलते-कूदते घर लौटे।

दिग्विजयी भी पराजित योद्धाकी भाँति लज्जित और दुःखित होकर डेरे पर लौटे। आज एक साधारण युवक अध्यापकने वह भी केवल व्याकरण के अध्यापकने उनकी सारी प्रतिष्ठा धूलमें मिला दी थी। आज उन्हें खाना-पीना विषवत लग रहा था। वे बिस्तरेपर लेटे-लेटे अपने दुर्भाग्यपर आँसू बहाने लगे—'हो न हो आज सरस्वती देवी मुझपर अवश्य ही अप्रसन्न हैं; अन्यथा आज एक व्याकरण के युवक अध्यापकके सामने मेरे मुखसे एक भी शब्द न निकले! यह कैसे हो सकता है? उनका घर कैसे झूठा हो गया? उन्होंने तो शास्त्रार्थके समय मेरी जीह्वा पर निवास करनेका वरदान दिया था। यह क्या हो गया? ऐसा सोच कर वे सरस्वतीका मन्त्र जपते-जपते सो गये। स्वप्नमें देखा, सरस्वती देवी उनसे कह रही हैं—'विप्र! तुम दुःखी क्यों हो? तुम्हें तो मेरे मन्त्रका इतने दिनों तक जाप करनेका फल आज मिल गया। निमाई पण्डित कोई साधारण अध्यापक नहीं। वे सर्व-शक्तिमान स्वयं भगवान् हैं। इच्छा मात्रसे ही वे अनन्त विश्व-ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन और संहार करते हैं। मैं तो उनकी एक नगण्य सेविका हूँ। तुम शीघ्र ही उनकी शरण में जाओ और आत्म-समर्पण करो। देर न करो। तुम्हारा कल्याण होगा।' इतना कह कर वे अन्तर्द्धान हो गयीं। इतनेमें ही दिग्विजयीकी आँखें खुल गयीं।

अब तक सूर्य पूरब दिशाको अरुण रंगमें रंग कर धीरे-धीरे ऊपर उठने लगे थे। दिग्विजयी नंगे पाँव पूछते-पाछते निमाई पण्डितके घर पहुँचे और उनके भुवन पावन चरणोंमें अपना मस्तक लगा दिये। उनके नेत्रसे अश्रु बिन्दु टपक-टपक कर निमाईके चरण कमलोंको पखारने लगे।

(क्रमशः)

जैव-धर्म

[गतांकसे आगे]

बाइसवाँ अध्याय

प्रमेयके अन्तर्गत प्रयोजन-तत्त्वका विचार आरम्भ

आज एकादशी है। श्रीवास-अंगनमें बकुलपेड़के नीचे लम्बे-चौड़े चबुतरेके ऊपर वैष्णवजन कीर्त्तन कर रहे हैं। कोई-कोई हा गौरांग! हा नित्यानन्द! कह कर लम्बी साँसें भर रहे हैं। हमारे वृद्ध बाबाजी महाशय न जाने किस भावमें विभोर हैं। देखते-ही-देखते वे बिलकुल ही निस्तब्ध हो गये और कुछ देर बाद 'हा धिक्!' कह कर बड़े जोरसे रोने लगे। हाय! मेरे रूप कहाँ हैं, मेरे सनातन कहाँ हैं, मेरे दासगोस्वामी कहाँ हैं, मेरे प्राण-प्रिय सहोदर कृष्ण-दास कविराज मुझे अकेला छोड़ कर कहाँ चले गये। हाय! उनका विच्छेद-दुःख सहनेके लिये मैं आज भी जीवित हूँ! मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। श्रीराधाकुण्डका ध्यान भी मुझे कष्टकर प्रतीत होता है! मेरे प्राण छटपट कर रहे हैं। रूप-सनातन दर्शन देकर मेरे विकल प्राणोंकी रक्षा करें। उनसे विच्छेद होने पर भी मेरे प्राण नहीं निकले, मुझे धिक्कार है!—इस प्रकार कहते-कहते वे आँगनकी धूलिमें लोटने लगे।

उपस्थित वैष्णवोंने कहा—'बाबाजी! आप शान्त हों; रूप-रघुनाथ आपके हृदयमें ही हैं, इधर देखिये, श्रीचैतन्य महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु आपके सामने नृत्य कर रहे हैं।'

'ऐं ! ऐं कहाँ !'—बाबाजी उछल कर एकदम खड़े हो गये। सामने श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीगदाधर और श्रीनिवास आदि भक्तजनोंको कीर्त्तन करते देखा। ये सभी महाभावमें विभोर होकर नृत्य कर रहे थे। इस दृश्य को देख कर बोले—'धन्य मायापुर ! ब्रजका शोक केवल मायापुरमें ही दूर होता है।' दृश्य अन्तर्द्धान होने पर वे बहुत देर तक नृत्य करते रहे। पश्चात् शान्त होकर अपनी कुटीमें बैठे।

बाबाजी अभी बैठे ही थे कि विजयकुमार और ब्रजनाथ उनके चरणोंमें गिर कर प्रणाम किये। उन्हें देख कर बाबाजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'तुमलोगोंका भजन कैसा चल रहा है ?'

दोनोंने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—'प्रभो ! आपकी कृपा चाहिये। आपकी कृपा ही हमारा सर्वस्व है। जन्म-जन्मान्तरोंकी राशि-राशि सुकृतिके कारण ही हमने अनायास आपके चरणकमलोंमें स्थान पाया है। आज एकादशी है, आपकी आज्ञानुसार हम निर्जला उपवास रह कर आपके दर्शनोंके लिये आये हैं।'

बाबाजी—'तुम लोग धन्य हो। जल्दी ही भावावस्था प्राप्त करोगे।'

विजयकुमार—'प्रभो ! भावावस्था किसे कहते हैं ? आपने तो अभी तक हमें 'भावावस्था' के सम्बन्धमें कुछ भी नहीं बतलाया है, बतलानेकी कृपा करें।'

बाबाजी—'मैंने अब तक तुमलोगोंको साधनके विषयमें ही शिक्षा दी है। साधन करते-करते सिद्धावस्था आती है। उस सिद्धावस्थाका प्रागभाव (पूर्वाभास) ही भाव है। श्रीदशमूलमें सिद्धावस्थाका इस प्रकार वर्णन है—

'स्वरूपावस्थाने मधुर-रस-भावोदय इह
ब्रजे राधाकृष्ण-स्वजन-जन-भावं हृदि वहन्।
परानन्दे प्रीतिं जगदतुल-सम्पत् सुखमहो
विलासाख्ये तत्त्वे परम-परिचर्यां स लभते॥

[१० (क) दशमूल]

अर्थात्—साधन-भक्तिकी परिपक्व अवस्थामें जीव जब अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है, तब ह्लादिनी-शक्तिके प्रभावसे उसमें मधुर रसका भाव उत्पन्न होता है—अर्थात् उसके हृदयमें ब्रजमें श्रीराधा-कृष्णके स्वजन-परिजनोंके अनुगत होनेका भाव उदित हो पड़ता है। क्रमशः जगत्में अतुल सम्पद-सुख और विलासाख्य परानन्द तत्त्वकी सेवा भी उसे प्राप्त होती है। इससे अधिक जीवका कोई अधिक लाभ नहीं है।

इस श्लोकमें प्रयोजन रूप प्रेमावस्थाका ही वर्णन है। प्रेमावस्थाकी प्रथम अवस्था ही भाव है—

'प्रभुः कः को जीवः कथमिदमचिद् विश्वमिति वा
विचार्यैतानर्थान् हरि-भजनकृच्छ्रान्वचतुरः।
अभेदाशां धर्म्मान् सकलमपराधं परिहरन्
हरेर्नामानन्दं पिबति हरि-दासो हरि-जनैः॥

[१० (ख) दशमूल]

अर्थात्, कृष्ण कौन हैं ? मैं (जीव) कौन हूँ ? यह चिद्-अचिद् विश्व क्या है ? इन विषयोंका विवेचन कर हरिभजन-परायण, शास्त्र-विषयमें कुशल व्यक्ति अभेदकी आशा, समस्त प्रकारके धर्म-अधर्म और अपराधोंका वर्जन कर सत्संगमें रह कर अपनेको हरिका दास समझते हुए हरिनामानन्दका आस्वादन करते हैं।

यह दशमूल एक अपूर्व सुन्दर संग्रह है। श्रीमन्महाप्रभुकी सारी शिक्षाएँ इस दशमूलमें गागरमें सागरकी तरह भरी हैं।'

विजय—'मैं दशमूलका संक्षेपमें माहात्म्य सुनना चाहता हूँ।'

बाबाजी—'श्रवण करो—

अर्थात्—इस दशमूलका सेवन करनेसे जीवका अविद्या रूप रोग जड़से दूर हो जाता है एवं पश्चात साधुसंग द्वारा भावकी पुष्टि और तुष्टि लाभ करता है।'

विजय—'प्रभो ! यह अपूर्व दशमूल हम सबके गलेका कंठहार हो; हमलोग प्रतिदिन इस दशमूल का पाठ कर श्रीमन्महाप्रभुको प्रणाम किया करेंगे। अब कृपया 'भाव-तत्त्व' को विस्तारसे बतलाइये।'

बाबाजी—यदि प्रेमको सूर्य मान लिया जाय, तो प्रेमरूप सूर्यका अंश शुद्ध सत्त्व-विशेषरूप-तत्त्व ही—'भाव' है।

शुद्धसत्त्व-विशेष-स्वरूप ही भावका स्वरूप-लक्षण है। भावका दूसरा नाम 'रति' है। भावको कोई-कोई 'प्रेमाङ्कुर' भी कहते हैं। सर्व-प्रकाशिका स्वरूप-शक्तिकी सम्वित् नामक वृत्तिको शुद्ध-सत्त्व कहा जा सकता है—वह मायाकी वृत्ति नहीं है। उस सम्वित् नामक वृत्तिके साथ ह्लादिनी-वृत्ति मिलित होने पर उसका सार-अंश ही 'भाव' कहलाता है।

सम्विद्-वृत्ति द्वारा वस्तुका ज्ञान होता है और ह्लादिनी वृत्तिद्वारा वस्तु आस्वादित होती है। कृष्ण ही परम-वस्तु हैं कृष्ण-रूप परम-वस्तुको स्वरूप-शक्तिकी सर्व-प्रकाशिका-वृत्तिसे जाना जाता है; उन्हें जीवशक्तिकी सम्विद-वृत्तिसे नहीं जाना जा सकता है। भगवानकी कृपा या भक्तकी कृपा द्वारा जब जीवके हृदयमें स्वरूपशक्तिका आविर्भाव होता है, तभी जीवके हृदयमें स्वरूप-शक्तिकी सम्वित्-वृत्ति काम करती है; ऐसा होनेसे ही चिज्जगतका ज्ञान प्रकाशित होता है। चित्-जगत्का स्वरूप ही शुद्ध-सत्त्व है, मायिक जगत्का स्वरूप सत्त्व, रज और तम गुणोंसे मिश्रित स्थूल-तत्त्व है। उस चित् जगत्के ज्ञानके साथ ह्लादिनीका सार मिलित होने पर चिज्जगतका मधुरस्वाद उदित होता है। वही आस्वाद पूर्णरूपसे उदित होने पर 'प्रेम कहलाता है।

यदि प्रेमको सूर्य माना जाय, तो भाव—उसकी किरण है। भावके स्वरूपका यही परिचय है। भाव-की विशेषता यह है कि वह जीवके हृदयको पवित्र कर अतिशय मसृण अर्थात् कोमल बनाता है।' 'रुचि'-शब्दसे प्राप्ति-अभिलाष, आनुकूल्याभिलाष और सौहार्दाभिलाषका बोध होता है। भावको प्रेमका पहला चित्र कहा जा सकता है। मसृण'-शब्द से चित्तकी आर्द्रता—कोमलता समझनी चाहिये। तन्त्रमें प्रेमकी प्रारम्भिक अवस्थाको 'भाव' बतलाया गया है। भावका उदय होनेसे पुलक आदि सात्त्विक विकार-समूह अल्प मात्रामें प्रकाशित होते हैं। नित्य-सिद्धोंमें भाव स्वतःसिद्ध होता है। वही भाव बद्धजीवकी मनोवृत्ति पर आविर्भूत होकर मनोवृत्ति-की स्वरूपताको प्राप्त होता है। अतएव स्वयं प्रकाश रूप होकर भी प्रकाश्यकी तरह अर्थात् पहले नहीं था, अब पैदा हो गया, ऐसा भासता है। भावका स्वाभाविक कार्य ही कृष्ण-स्वरूप और कृष्ण-लीलाके स्वरूपको प्रकाश करना है; मनोवृत्तिके रूपमें प्रकाशित रह कर भी वह दूसरे प्रकारके ज्ञानद्वारा प्रकाश्यका सा भाव धारण किये हुए है। वास्तवमें रति स्वयं आस्वादन-स्वरूपा होती है और ऐसा होने पर भी वह बद्ध जीवके लिये कृष्ण और कृष्णलीला आस्वाद के हेतुके रूपमें दीख पड़ती है।'

व्रजनाथ—'भाव कितने प्रकारके होते हैं?'

बाबाजी—'उत्पत्ति भेदसे भाव दो प्रकारका होता है—(१) साधनाभिनिवेशज भाव और (२) कृष्ण और कृष्णभक्तका 'प्रसादज' भाव। साधारण तौर पर साधनाभिनिवेशज भाव ही लक्षित होता है, प्रसादज-भाव विरला ही देखा जाता है।'

व्रजनाथ—'साधनाभिनिवेसज-भाव किसे कहते हैं?

बाबाजी—'वैधी और रागानुगमार्गके भेदसे साधनाभिनिवेशज-भाव दो प्रकारका होता है। साधनाभिनिवेशज-भाव सबसे पहले रुचिको उत्पन्न करता है, पश्चात् भगवान्के प्रति आसक्ति और अन्तमें रतिको उत्पन्न करता है। पुराणों और नाट्य-शास्त्रोंमें रति और भावको एक माना जानेके कारण मैं भी दोनोंको एक ही मान रहा हूँ। वैधीभक्ति-साधनाभिनिवेशज अवस्थामें श्रद्धा पहले निष्ठाको उत्पन्न करती है और पीछे निष्ठा रुचिको पैदा करती है। परन्तु रागानुगाभक्तिके साधनज-भावमें एक ही बार रुचि उत्पन्न होती है।

व्रजनाथ—'श्रीकृष्ण और कृष्णभक्त-प्रसादज-भाव किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'बिना किसी प्रकारके साधनके जो

भाव अकस्मात् उदय हो पड़ता है, उसे कृष्ण प्रसादज भाव या कृष्णभक्त प्रसादज-भाव कहते हैं।'

ब्रजनाथ—'श्रीकृष्ण-प्रसादज-भावकी व्याख्या कीजिये।'

बाबाजी—'कृष्ण-प्रसाद (कृपा) तीन प्रकारका होता है—(१) वाचिक, (२) आलोक दान और हार्द। कृष्ण किसी ब्राह्मण पर कृपा करते हुए बोले—'हे द्विजेन्द्र! सर्वश्रेष्ठ मङ्गलको प्रदान करनेवाली पूर्णानन्दमयी अव्यभिचारिणी मेरी भक्ति तुममें उदित हो।'—ऐसा कहते ही उसके हृदयमें (वाचिक प्रसादज) भाव उदय हो गया।

'वनमें रहनेवाले ऋषियोंने आजसे पहले कृष्णको कभी नहीं देखा था। आज कृष्णका दर्शन करते ही उनके हृदयमें भाव उत्पन्न हो गया, यह कृष्णकी कृपाका प्रभाव था।' यह आलोकदानज-भावका उदाहरण है।

अन्तःकरणमें जो प्रसाद उदित होता है, उसका नाम 'हार्दभाव' है। हार्द-भावका उदाहरण श्रीशुक आदि भगवद्भक्तोंके जीवन-चरित्रमें पाया जाता है, श्रीमन्महाप्रभुके अवतारमें ये तीनों प्रसादज-भाव अनेक जगहोंमें दिखलाई पड़ते हैं। श्रीमन्महाप्रभुको देख कर असंख्य लोगोंको भावोदय हुआ था। जगाई मधाई आदि वाचिक प्रसादज-भाव प्राप्त किये थे; जीवगोस्वामी आदि आन्तर प्रसादज-भाव प्राप्त हुए थे।'

ब्रजनाथ—'तद्भक्त प्रसादज-भाव किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'श्रीनारदमुनिकी कृपासे ध्रुव और प्रह्लादको भगवद्भाव प्राप्त हुआ था। श्रीरूप-सनातन आदि पार्षदोंकी कृपासे असंख्य लोगोंके हृदयमें भक्तिके भाव उदित हुए हैं।

विजय—'भावोदय होनेका लक्षण क्या है?'

बाबाजी—'भाव उदय होनेपर साधकमें क्षांति (क्षमा), अव्यर्थकालत्व, विरक्ति, मानशून्यता आशाबन्ध, उत्कंठा, नामकीर्त्तनमें रुचि, कृष्णके गुणगानमें और कृष्णकी लीला-स्थलियोंमें प्रीति, ये सब लक्षण दिखलायी पड़ने लगते हैं।'

विजय—'क्षांति किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'क्रोध या चित्त-चांचल्यका कारण उपस्थित होने पर भी शान्त रहनेको क्षांति कहते हैं; क्षांतिको 'क्षमा' कह सकते हैं।'

विजय—'अव्यर्थकालत्व किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'समय व्यर्थ न जाय, इसलिये निरन्तर हरिभजनमें तत्पर रहनेका नाम अव्यर्थकालत्व है।'

विजय—'विरक्तिका तात्पर्य बतलाईये।'

बाबाजी—'विषय-सुखोंके प्रति इन्द्रियोंकी अरुचिको 'विरक्ति' कहते हैं।'

विजय—'जिन लोगोंने 'वेश' ले लिया है, वे अपनेको विरक्त कह सकते हैं या नहीं?'

बाबाजी—'वेश एक लौकिक व्यापार है। हृदयमें भाव उदित होने पर चित्-जगतके प्रति प्रबल रूपमें रुचि होती है और जड़ जगतके प्रति जो रुचि थी, वह धीरे-धीरे कम होती जाती है तथा अन्तमें जब भाव पूर्णरूपसे प्रकाशित हो जाता है तब जड़ रुचि भी शून्यप्राय हो जाती है। इसीका नाम 'विरक्ति है।' विरक्ति लाभ करनेके पश्चात् अपनी आवश्यकताओंको कम करनेके उद्देश्यसे जो वैष्णव वेश लेते हैं, उनको 'विरक्त वैष्णव' कहते हैं। जो लोग भाव उदय होनेके पहले ही 'वेश' ले लेते हैं, उनका वेश अवैध है, अर्थात् वह 'वेश' वेश नहीं है। श्रीमन्महाप्रभुजीने छोटे हरिदासको दण्ड देते समय जगत्को यही शिक्षा दी है।'

विजयकुमार—'मानशून्यता किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'धन, बल, रूप, उच्च पद, उच्च जाति और उच्च कुल आदिसे अभिमान पैदा होता है। इनके वर्तमान रहने पर भी जिनको अभिमान नहीं होता, वे 'मानशून्य' हैं। पद्म पुराणमें मानशून्यताका बड़ा ही सुन्दर उदाहरण है। एक बड़े प्रतिभाशाली सम्राट थे। बड़े-बड़े राजा उनके अधीन थे। परन्तु सौभाग्यवश राजाके हृदयमें कृष्णभक्ति उत्पन्न हुई। वे अपने विराट ऐश्वर्य और सम्राट पद का अभिमान छोड़ कर शत्रुके नगरमें मधुकरी भिक्षा

द्वारा अपना जीवन निर्वाह करने लगे। ब्राह्मण और शूद्र सबको नमस्कार करने लगे।'

विजय—'आशाबन्ध किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'कृष्ण मुझ पर अवश्य ही कृपा करेंगे—इस प्रकार दृढ़ विश्वासके साथ भजनमें मन लगानेका नाम 'आशाबन्ध' है।'

विजय—'उत्कंठ किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'अपने मनोरथकी प्राप्तिके लिये अत्यधिक लोभ होनेसे उसे 'उत्कंठा' कहते हैं।'

विजय—'नाम कीर्त्तनमें रुचि' किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'जितने प्रकारके भजन हैं, उन सबमें श्रीनाम-भजन ही सर्वश्रेष्ठ है, इस विश्वासके साथ निरन्तर हरिनाम लेनेको 'नाम कीर्त्तनमें रुचि' कहा जाता है। श्रीनाममें रुचिका होना परम श्रेयकी प्राप्ति की कुञ्जी है। नाम-तत्त्वके सम्बन्धमें दूसरे दिन समझ लेना।'

विजय—'कृष्णके गुणगानमें आसक्ति किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'श्रीकृष्ण कर्णामृतमें कहते हैं—

माधुर्यादपि मधुरं, मन्मथता तस्य किमपि कैशोरम्।
चापल्यादपि चपलं, चेतो वत हरति हन्त किं कुर्मः॥

श्रीकृष्णकी गुणावलीको जितना ही क्यों नहीं सुना जाय, तृप्ति नहीं होती; और भी सुननेकी इच्छा होती है—आसक्ति बढ़ती जाती है।'

विजय—'कृष्णकी लीला स्थलियोंमें प्रीति कैसी होती है?'

बाबा—'जब कोई भक्त श्रीनवद्वीप धामकी परिक्रमा करते हैं, तब वे पूछते हैं—हे धामवासियों! हमारे प्राणप्रिय प्रभुका जन्म कहाँ हुआ था? महाप्रभुजीका कीर्त्तन किस मार्गसे होकर गुजरा था? कृपा करके यह भी बतलाईये कि प्रभुने गोपबालकके साथ किस स्थान पर पूर्वाह्न लीला की थी? धामवासी उत्तर देते हैं—'यह स्थान जहाँ हमलोग हैं, श्रीमायापुर है। सामने तुलसी-काननसे घिरा हुआ जो ऊँचा स्थान दिखलाई पड़ रहा है, वहीं पर श्रीमन्महाप्रभुजीका जन्म हुआ था। देखो, ये गंगानागर, सिमुलिया, गादिगाछा मजिदा आदि ग्राम हैं; इन्हीं ग्रामोंसे होकर श्रीमन्महाप्रभुजीका सर्वप्रथम संकीर्त्तन गुजरा था। गौड़-वासियोंके मुँहसे प्रेमसे पगी हुई मधुर बातोंको सुनकर उनके शरीरमें रोमांच हो उठता है, हृदय आनन्दसे गद्गद् हो जाता है तथा नेत्रोंसे अश्रुबिन्दु झरने लगते हैं। इस प्रकार वह महाप्रभुकी सारी लीला-स्थलियोंकी परिक्रमा करता है—इसीको तद्वसति स्थले प्रीति' अर्थात्—'भगवल्लीला-स्थलियोंमें प्रीति' कहते हैं।'

ब्रजनाथ—'जहाँ इस प्रकारके भाव दिखलाई पड़ें, वहाँ क्या ऐसा समझना होगा कि उस व्यक्तिमें कृष्ण के प्रति रति उदित हो गयी है?'

बाबाजी—'नहीं। सरल रूपमें श्रीकृष्णके प्रति जो भाव उदित होता है, उसी का नाम 'रति' है ऐसे भाव दूसरी जगह लक्षित होने पर भी उसे रति नहीं कहा जा सकता है।'

ब्रजनाथ—'कृपया दो-एक उदाहरण देकर इस विषयको और भी स्पष्ट कीजिये।'

बाबाजी—'मान लो, एक व्यक्तिमुक्तिकी कामना करता है। निराकार ब्रह्मकी शुष्क और कष्टप्रद उपासना उसे दुखदायी जान पड़ी। उसने कहीं से सुना कि भगवन्नामका उच्चारण करनेसे वह मुक्ति अत्यन्त सहज ही सुलभ होती है, अजामिल आदिने भगवन्नामका उच्चारण कर बड़ी आसानीसे मुक्ति पाई है। ऐसा सुनकर वह बड़ा आनन्दित हुआ और नामकी मुक्ति देनेकी शक्तिका स्मरण करता हुआ

माधुर्यसे भी अधिक मधुर चापल्यसे भी अधिक चपल श्रीकृष्णका मन्मथ धर्मयुक्त कोई अनिर्वचनीय किशोर भाव मेरे चित्तका हरण कर रहा है। हाय! मैं क्या करूँ?

सहज ही मुक्ति मिल जायगी इसलिये आनन्दसे विह्वल हुआ रोते-रोते नामोच्चारणपूर्वक अचेतन होकर गिर पड़ा। यहाँ इस मुक्तिकामी साधक द्वारा उच्चरित नाम शुद्ध नाम नहीं है और न उसका वह भाव ही कृष्ण-रति (शुद्ध-भाव) है; क्योंकि कृष्णके प्रति उसका 'सरल भाव' नहीं है। उसका मूल उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है; कृष्ण-प्रेम नहीं। उसके द्वारा उच्चरित नाम—नामाभास है तथा उसका भाव—भावाभास है। इसका उदाहरण,—कोई विषय-भोग की कामनावाला व्यक्ति दुर्गादेवीकी पूजा कर 'वरं देहि, धनं देहि' आदि प्रार्थना करता है और 'दुर्गा-देवी प्रसन्न होकर मेरी मनोकामना शीघ्र ही पूर्ण करेंगी'—ऐसा सोच कर वह रोते-रोते देवीके सामने 'हाँ दुर्गे'—कह कर लोटता पलोटता है। यहाँ इस व्यक्तिका रोने और गिरने आदिमें जो भाव दिखलायी पड़ता है, वह शुद्ध भाव नहीं है; बल्कि कहीं-कहीं वह 'भावाभास' और कहीं-कहीं पर वह 'कुभाव' कहलाता है। शुद्ध कृष्ण-भजनके बिना 'भाव' उदय नहीं होता। कृष्णसे सम्बन्धित भावको भी कुभाव या भावभास ही कहेंगे यदि उसका उद्देश्य भोग या मोक्ष हो। मायावादसे दूषित हृदयमें चाहे जैसा भी भाव क्यों न उत्पन्न हो, उन सबको 'कुभाव' ही कहेंगे। ऐसा व्यक्ति यदि सात-पहर तक अचेतन पड़ा रहे, तो भी उसे भाव नहीं कहा जा सकता है। हाय! समस्त प्रकारकी कामनाओंसे मुक्त और परम मुक्त जन भी जिसका निरन्तर अनुसंधान करते हैं और अत्यन्त भजनशील व्यक्तिको भी कृष्ण जिसे परम गोप्य होनेके कारण सहज ही नहीं दिया करते, वह 'भगवती-रति' शुद्धभक्ति शून्य और भोग मोक्षकी कामनारूपी पंकसे भरे हृदयमें भला कैसे उदय हो सकती है?'

ब्रजनाथ—'प्रभो! अनेक स्थलोंमें ऐसा देखा जाता है कि विषय-भोग और मुक्ति-कामियोंके शरीरमें हरिनाम संकीर्तन करते-करते पूर्वोक्त भावके लक्षण-समूह उदित होते हैं; उनको क्या कहा जाय?'

बाबाजी—'ऐसे लोगोंमें भावके बाहरी लक्षणोंको देखकर केवल मूर्खलोग ही आश्चर्य प्रकट करते हैं। परन्तु जो लोग भाव-तत्त्वको ठीक-ठीक समझते हैं, वे ऐसे भावोंको 'रत्याभास' कहते हैं तथा इससे सर्वदा दूर रहते हैं।

विजय—'यह रत्याभास कितने प्रकारका होता है?'

बाबाजी—'दो प्रकारका—प्रतिबिम्ब-रत्याभास और छाया-रत्याभास।'

विजय—'प्रतिबिम्ब-रत्याभास किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'जो लोग मुक्तिकी कामना रखते हैं, वे ऐसा सोचते हैं कि ब्रह्मज्ञानके बिना मुक्ति नहीं मिलती, परन्तु ब्रह्मज्ञानकी साधना बड़ी कठिन और कष्टदायिनी है। ऐसी दशामें यदि केवल हरिनाम करनेसे ही वह मुक्ति मिल जाय तो अत्यन्त सहज ही और बिना परिश्रम ही ब्रह्मज्ञान मिल जायगा। ऐसा सोच कर बिना कष्ट सहे ही मुक्ति पानेकी आशासे परमानन्दित होकर उनके शरीरमें अश्रु-पुलक आदि विकारके आभासमात्र उदित होते हैं। ऐसे अश्रु-पुलकादि भाव-विकारोंको 'प्रतिबिम्बाभास' कहते हैं।

ब्रजनाथ—'इसे प्रतिबिम्ब क्यों कहा गया है?'

बाबाजी—'विषय-भोग और मोक्ष चाहने वालों का यदि सौभाग्यसे किसी समय सत्संग मिल जाता है, तब वे भी भगवन्नाम कीर्त्तन आदि करने लगते हैं और उस समय शुद्धभक्तके हृदय आकाशमें उदित भाव-चन्द्रका कुछ-कुछ आभास उस मुक्ति-पिपासुके हृदयमें भी उदित हो पड़ता है। इसीका नाम 'प्रति-बिम्ब' है। भोग और मोक्ष चाहनेवालोंके हृदयमें 'शुद्ध भाव' कदापि उदय नहीं होता है। शुद्धभक्तोंका भाव देख कर इनका भावाभास उदित होता है। उस भावाभासका नाम प्रतिबिम्बाभास है। प्रतिबिम्ब भावाभास प्रायः जीवोंका नित्यकल्याण नहीं उत्पन्न करता है, केवल भोग और मोक्ष प्रदान कर दूर हो जाता है। ऐसे भावाभासको एक प्रकारसे नामापराध कहा जा सकता है।'

ब्रजनाथ—'छाया-भावाभासका स्वरूप बतलाइये।'

बाबाजी—'आत्मतत्त्वसे अपरिचित सरल कनिष्ठ भक्तजनकी भगवत्प्रिय क्रिया, काल, देश और पात्र आदिके संगसे रतिके लक्षणोंके समान क्षुद्र, कौतुहलमयी, चञ्चला और दुःख-हरिणी एक प्रकारकी रति-छाया उदित होती है, उसे ही छाया-रत्याभास कहते हैं। भक्ति कुछ हद तक शुद्ध होने पर भी दृढ़ नहीं होती, उसी समय यह रत्याभास उदित होता है। जैसा भी हो, यह छाया-भावाभास अनेक सुकृतिके प्रभावसे ही उत्पन्न होता है। क्योंकि छाया-भावाभास सत्संग द्वारा शुद्ध होकर क्रमशः शुद्धभावके रूपमें उदित हो पड़ता है। परन्तु स्मरण रहे कि यह भावाभास जितना भी उत्तम क्यों न हो, शुद्ध वैष्णवके प्रति अपराध होने पर कृष्णपक्षके चन्द्रकी तरह धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। भावाभासकी तो बात ही क्या, शुद्धभाव भी कृष्णभक्तोंके प्रति अपराध होने पर क्रमशः तिरोहित हो पड़ता है। सुप्रसिद्ध मुमुक्षु व्यक्ति का अधिक संग करने पर भाव भी भावाभास हो पड़ता है अथवा अपनेमें ईश्वर होनेका अभिमान ला देता है। इसीलिये कहीं-कहीं नृत्य करते-करते नवीन भक्तजनोंमें मुक्ति पर्यन्त 'ईश्वर भाव' उदित होते देखा जाता है। नवीन भक्तजन ही बिना सोचे समझे मुमुक्षुओं (मुक्तिकामियों) का संग करते हैं, इसीसे उनमें ये सब उपद्रव उपस्थित होते हैं। इन नवीन भक्तोंको मुमुक्षु व्यक्तियोंका संग सावधानी से परित्याग करना चाहिए। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि किसी व्यक्तिको अकस्मात भाव उदित हो गया है; इसका समाधान इस प्रकार करना चाहिए कि उस व्यक्तिने पूर्व-जन्ममें बहुत ही साधन किया था, परन्तु अभी तक नाना-प्रकारकी विघ्न-बाधाओं के कारण उसके पूर्व-जन्मके सुसाधनोंका फल उत्पन्न नहीं हो सका था। परन्तु बाधा दूर होते ही अकस्मात उसके हृदयमें शुद्ध भावका उदय हो गया। कभी-कभी कृष्णकी अहैतुकी कृपासे ऐसा श्रेष्ठ भाव अकस्मात उत्पन्न हो जाता है। इस भावका 'श्रीकृष्ण-प्रसादज भाव' कह सकते हैं। असल भाव प्रकाशित होने पर भी भावुकके आचरणमें कुछ-कुछ दोष सा परिलक्षित होने पर भी उसके प्रति असूया नहीं करनी चाहिए अर्थात् उसमें दोषारोपण नहीं करना चाहिए। क्योंकि भाव उदित होने पर साधक सब तरहसे कृतकृत्य हो जाता है। ऐसी दशा में उससे पाप-आचरण सम्भव नहीं है। यदि कभी वैसा पापाचरण दीख पड़े तो इस विषयमें दो प्रकारसे विचार करना चाहिए। महापुरुष-भक्तका संयोगवश एक पाप कार्य हो गया है, वह उसमें कभी स्थायी रूपमें नहीं रह सकता; अथवा पूर्व जन्मके कुछ पापाभास हैं, जो भाव उदय होने पर भी अभी सम्पूर्णरूपसे नष्ट नहीं हो सके हैं, अब शीघ्र ही नष्ट होनेवाले हैं। ऐसा सोचकर भक्तजनों के मामूली दोष पर ध्यान नहीं देना चाहिए। यदि ऐसे स्थल पर दोष देखा जाय तो नामापराध हो जायगा। नृसिंह पुराणमें ऐसे दोषों पर ध्यान देनेके लिये निषेध किया गया है—

> भगवति च हरावनन्यचेता,
> भृशमलिनोऽपि विराजते मनुष्यः।
> न हि शशकलुषच्छविः कदाचित्,
> तिमिरपरो भवतामुपैति चन्द्रः॥

अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा शशाङ्क युक्त होनेपर भी कभी अंधकारसे ढक नहीं जाते, उसी प्रकार भगवान् श्रीहरिके प्रति अनन्य भावसे युक्त मानव अतिशय दुराचारी होनेपर भी शोभा पाता रहता है—इस उपदेशसे यह न समझ लेना कि भक्तजन निरन्तर पाप ही किया करते हैं; वास्तवमें भक्तिनिष्ठा उत्पन्नहोने पर पाप-वासना नहीं रहती है। परन्तु जबतक शरीर वर्तमान रहता है, तबतक घटनावशतः अकस्मात कोई पाप-कर्म हो जाता है। किन्तु वह अनन्य भक्त अपने भजन प्रभावसे उस पापको तत्क्षण उसी प्रकार जला डालता है, जैसे ज्वलंत आग रुईकी छोटीसी ढेरको जला देती है। और आगेके लिये वह सावधान हो जाता है, जिससे पुनः कोई पाप न होने पावे।

(क्रमशः)

श्रीगौड़ीय व्रतोपवास

२५ त्रिविक्रम, १ आषाढ़, १६ जून, मंगलवार—दशहरा, श्रीगंगापूजा, श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुका तिरोभाव।

२६ त्रिविक्रम, २ आषाढ़, १७ जून, बुधवार—पाण्डवा निर्जला एकादशीका उपवास। दूसरे दिन सबेरे ८-५६ के पहले पारण।

२८ त्रिविक्रम, ४ आषाढ़, १९ जून, शुक्रवार—श्रीपाट पानीहाटीमें श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीका दण्ड-महोत्सव।

२९ त्रिविक्रम, ५ आषाढ़, २० जून, शनिवार—श्रीश्रीजगन्नाथ देवकी स्नानयात्रा। श्रीमुकुन्द दत्त और श्रीधर पण्डितका तिरोभाव।

१० वामन, १५ आषाढ़, ३० जून, मङ्गलवार—श्रीवास पण्डितका तिरोभाव

११ वामन, १६ आषाढ़, १जुलाई, बुधवार—योगिनी एकादशीका उपवास। दूसरे दिन प्रातः ६-३४ से लेकर ९-२६ के बीच एकादशीका पारण।

१६ वामन, २१ आषाढ़, ६ जुलाई, सोमवार—श्रीगदाधर गोस्वामी और श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव। चिनसुरा, उद्धारण गौड़ीय मठमें आजसे श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके तिरोभाव और श्रीजगन्नाथ देवकी रथयात्राके उपलक्ष्यमें १२ दिनों का वार्षिक महोत्सव आरम्भ।

१७ वामन, २२ आषाढ़, ७ जुलाई, मङ्गलवार—श्रीगुण्डिचा-मार्जन।

१८ वामन, २३ आषाढ़, ८ जुलाई, बुधवार—श्रीश्रीजगन्नाथ देवकी रथयात्रा। श्री स्वरूप दामोदर गोस्वामी का तिरोभाव।

२२ वामन, २७ आषाढ़, १२ जुलाई, रविवार—होरापंचमी, श्रीलक्ष्मी-विजयोत्सव।

२६ वामन, ३१ आषाढ़, १६ जुलाई, बृहस्पतिवार—शयन एकादशीका उपवास। श्रीजगन्नाथदेवकी पुनर्यात्रा।

२७ वामन, ३२ आषाढ़, १७ जुलाई, शुक्रवार—९-३० के पहले एकादशीका पारण द्वादशीसे आरम्भ करनेवालोंके लिये चातुर्मास्यव्रत आरम्भ।

श्रीश्रीमदनमोहनजी मन्दिर वृन्दावनमें श्रीश्रीगौर-जन्मोत्सव और दोलोत्सव

कलियुग पावनावतारी हरिनामसंकीर्त्तनके प्रवर्तक स्वयंभगवान श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके प्रधान पार्षद श्रीसनातन गोस्वामी द्वारा प्रकटित-विग्रह श्रीश्रीमदनमोहनजीके मंदिरमें श्रीराधामदनमोहन-सेवा-समितिके उद्योगसे भगवान शचीनन्दन श्रीगौर हरिके आविर्भावके उपलक्ष्यमें गत १७ मार्च मंगलवार से २५ मार्च बुधवार तक नौ दिवसीय उत्सव खूब समारोहसे मनाया गया है।

उक्त उत्सवमें सांस्कृतिक ब्रज-साहित्यके पद, हरिसंकीर्त्तन-यज्ञ, रसिया, भगवानकी विशेष झाँकियोंके दर्शन आदिका कार्यक्रम सफलतासे सम्पन्न हुआ है। श्रीमद् सनातन गोस्वामीके जीवन-चरित्र पर प्रस्तुत किये गये नाटकका अभिनय और धर्म समेलन उक्त अनुष्ठानके विशेष आकर्षण थे।

पं० बाल कृष्णजी, ठाकुर सूआ सिंहजी, पं० आर. बी शुक्ल, ठा० राधारमणजी, ठा० मम्मन सिंहजी दुसायत, पं० राधारमणजी, 'दलनायक' ठा० नत्थीसिंहजी दुसायत और ठा० राधेश्यामजी दुसायत आदि महोदयोंने उक्त अनुष्ठानमें सम्मिलित होकर उसे साफल्य मण्डित किया है।

—निजस्व संवाददाता